आचार्यदीपङ्करश्रीज्ञान विरचित

बोधिपथप्रदीप

༄༅། །དཔལ་དྲིལ་རྒྱུར་ཕྱོགས་མཛད་པའི་བྱང་ཆུབ་
ལམ་གྱི་སྒྲོན་མ་བཞུགས་སོ།།

आचार्यदीपङ्करश्रीज्ञान विरचित

बोधिपथप्रदीप

༄༅། །དཔལ་དྲྭ་ཝ་ཀྲ་ཤྲཱི་ཛྙཱ་ན་མཻ་ཏྲི་ཡ་བདེ་བྱང་ཆུབ་
ལམ་གྱི་སྒྲོན་མ་བཞུགས་སོ།།

अनुवादक

लोसङ् नोरबू शास्त्री

सम्पादक

डॉ० बनारसी लाल

श्री ठिनले शाशनी

आमुख

वज्रयान के आलोक में महापण्डित दीपङ्करश्रीज्ञान का व्यक्तित्व एवं बोधिपथप्रदीप का सार[1]

वज्रयान की उत्पत्ति कहाँ हुई? पूर्व बंगाल, आसाम में या उत्तर में स्वातघाटी (उड्डियान) में या दक्षिण में धान्यकटक या श्रीपर्वत पर इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है। इसी प्रकार स्वयं शाक्यमुनि ने गृध्रकूट पर तन्त्र की प्रथम देशना की या उनके अनुयायी किसी आचार्य के द्वारा श्री पर्वत पर? इसका भी ऐतिहासिक निर्णय लेना कठिन है। किन्तु यह तथ्य है कि तन्त्र के उद्भव के साथ-साथ बङ्ग भूमि तन्त्र संस्कृति एवं साधना का प्रधान क्षेत्र रहा है। और वह अपने अनेक बदलते हुए रूपों में अपने आदिकाल से अब तक निरवच्छिन्न रूप से वहाँ विद्यमान रहा है।

तन्त्र के सन्दर्भ में जब हम बङ्गभूमि कहते हैं तो उसमें पाल राजाओं के प्रशासित तत्कालीन उस सम्पूर्ण क्षेत्र को स्वीकार करते हैं जो वर्तमान काल में ढाका से लेकर सम्पूर्ण बंगाल और बिहार का वह अंश जो वर्तमान भागलपुर तक विस्तृत है। इस प्रसंग में इसका भी ध्यान रखना होगा कि प्रारम्भ से तन्त्रों की शैव-शाक्त दो अन्य धाराएँ भी रही हैं, जो बौद्ध तन्त्र के कुछ समान हैं, किन्तु भिन्न हैं, उसमें शाक्त तान्त्रिकों का प्रमुख प्रभाव स्थल भी यही क्षेत्र है। ज्ञात है कि उत्तर-दक्षिण सम्पूर्ण भारतीय जीवन पर तन्त्रसंस्कृति का गहन प्रभाव ईसवी पाँचवीं से १२वीं शती तक था। बाद की शताब्दियों में क्रमशः देश के अन्य क्षेत्रों में उसका प्रभाव घटता गया।

---

1. साभार : बौद्ध मनीषा, भाग-१, पृ० ३४७-३५४, केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह।

इसके विपरीत पूर्वी भारत के अंग, बंग, कलिंग क्षेत्र में उसका प्रभाव आज तक सजीव बना है। उसे बंगाल में वज्रयानी बौद्धों से परिवर्तित वैष्णवों, योगियों, सहजियों एवं धर्मपूजकों आदि अनेकों सम्प्रदायों में देखा जा सकता है। उसका प्रभाव आज भी न केवल धार्मिक कर्मकाण्डों में सुरक्षित है प्रत्युत वहाँ का लोकजीवन भी उससे अनुप्राणित है। वहाँ के व्रत-त्यौहार ही नहीं, मेला, यात्रा, लोकगीत, नृत्य, चित्र आदि जीवन की सभी विधाओं में उसका प्रभाव दिखलाई पड़ता है। तन्त्र की शक्तिशाली साधनाओं का आविष्कार और तान्त्रिक शास्त्रों के चिन्तन, मनन और लेखन का कालव्यापी कार्य बङ्ग प्रधान इस क्षेत्र में सम्भव हुआ। अपने परवर्ती काल में नालन्दा विश्वविद्यालय और अपने सम्पूर्ण काल में विक्रमशिला विश्वविद्यालय, जगद्दल एवं ओदन्तपुरी विहार में इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य हुए।

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान की यही मूल तपोभूमि थी एवं यहीं से उनकी प्रतिभा और चरित्र का आलोक स्वदेश और विदेशों में फैला। आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान का यह महत्त्व मात्र इतने में नहीं है कि उन्होंने विक्रमशिला विश्वविद्यालय को अपने प्रधानाचार्यत्व काल में अन्तिम उत्कर्ष तक पहुँचाया, जिससे उसे अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो सका तथा ५० के लगभग तंत्र एवं शास्त्र से सम्बन्धित छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे, अपितु उनके जीवन का इससे भी अधिक महत्त्व इसमें है कि तन्त्र संस्कृति और साधना में जब असामाजिकता व्याप्त होने लगी और बड़े-बड़े साधक भी परम्परागत अनुशासन और विनेयों की उपेक्षा करने लगे, जिसके फलस्वरूप मूल बौद्ध देशनाओं और तान्त्रिक जीवन में विरोध एवं असन्तुलन पैदा हुआ तो उन्होंने उसका खुलकर विरोध किया। उन्होंने सिद्धान्त और जीवन दोनों क्षेत्रों में सन्तुलन और समन्वय स्थापित किया।

इतिहास का वह विषम काल था, जिसमें देश में एक और तुर्कों का आक्रमण शुरू हुआ था और दूसरी ओर जनसामान्य के बीच आचार-विचार में तालमेल बिगड़ रहा था। इसी असन्तुलन के फलस्वरूप नेपाल और पूरे भेट देश में भी धार्मिक और सैद्धान्तिक अराजकता फैल गयी थी। धर्म के पुनरुद्धार और उसमें नया संस्कार करने के लिए आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ने जिस उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा और प्रयोग की कुशलता का परिचय दिया था, वह भारतीय संस्कृति के तत्कालीन पुनर्जागरण का एक अप्रतिम उदाहरण है।

दुर्भाग्यवश भारतीय संस्कृति के इस शौर्य सम्पन्न पवित्र कथा का साहित्य आज संस्कृत में उपलब्ध नहीं है किन्तु अपने धर्म-बन्धु तिब्बती आचार्यों के अनुवादों और उनके मूल ग्रन्थों से प्राप्त किया जा सकता है। अनुमानतः सैकड़ों विद्वान् भारतवर्ष से तिब्बत गये थे, जिसमें ९० के लगभग के नाम भी ज्ञात हैं। इनमें उड्डियान के पद्मसम्भव और महायान के विश्वविख्यात पण्डित शान्तरक्षित एवं कमलशील भी थे। इन आचार्यों ने तिब्बत में बौद्धधर्म को वास्तविक स्वरूप प्रदान किया था। किन्तु अनेक कारणों से जब उसमें ह्रास और चतुर्दिक् विकार आने लगा तो आचार्य दीपंकर ने अपने अद्भुत पाण्डित्य तथा प्रयोग कौशल से उसे रोका और धर्म तथा दर्शन का नवीनीकरण किया।

प्रथम बार वज्रयान का प्रकटीकरण धारणी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यद्यपि पूर्ववर्ती बौद्ध साहित्य में भी संरक्षित संकेतों के रूप में वह विकीर्ण है। प्राथमिक धारणियाँ प्राचीन महायान सूत्रों में अन्तर्निहित हैं। परवर्ती काल में उनका स्वतन्त्र रूप प्रकट हुआ *उष्णीषविजयधारणी सर्वतथागतहृदयविलोकितधारणी, वज्रपाणिसुमुखीधारणी* आदि धारणियाँ तृतीय शताब्दी तक संगृहीत हो चुकी थीं। ७वीं शताब्दी तक चीनी भाषा में भी शुभाकर सिंह आदि विद्वानों द्वारा अनेक धारणियों एवं वज्रयानी ग्रन्थों

का अनुवाद हो चुका था। कारण्डव्यूह, गण्डव्यूह जैसे ग्रन्थ यद्यपि सूत्र साहित्य माने जाते हैं, किन्तु वज्रयान का रूप इसमें भी पूर्णतया परिलक्षित हो जाता है। इस प्रकार प्राय: सभी ग्रन्थ ३-४ शताब्दी तक पूर्ण हो चुके थे। इस प्रकार सूत्र, तन्त्र और धारणियों के माध्यम से वज्रयान सातवीं शताब्दी तक विकसित हो चुका था।

तन्त्रों के विकास को समझने में निम्नलिखित शब्दों के प्रयोग का बड़ी ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे प्रमुख शबद हैं—वज्रयान, मन्त्रयान, तन्त्रयान, सहजयान और कालचक्रयान। परवर्ती काल में इन नामों का प्रयोग प्राय: समानार्थी एवं पर्यायवाची मानकर किया जाता है; किन्तु अध्ययन के आधार पर ज्ञात होता है कि ये विकास की विशेष अवस्थाओं के द्योतक हैं। साथ ही यह भी देखना होगा कि वज्रयान की इन विधाओं में से कितने महायान सूत्रों का किस मात्रा में अनुगमन करते हैं और किस मात्रा में अपनी स्वतन्त्रता प्रकट करते हैं।

अस्तु, आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान तक अपने सम्पूर्ण रूपों में वज्रयान विकसित हो चुका था। इस विकास के बीच भारतवर्ष और तिब्बत में जो कुछ मूलभूत समस्याएं खड़ी हुईं, उनके परिप्रेक्ष्य में आचार्य दीपंकर का महत्त्वपूर्ण अवदान समझा जा सकता है।

संक्षेप में समस्या थी प्रातिमोक्ष-प्रधान विनय, बोधिसत्त्वों की पारमिताचर्या और वज्रयान के समय-संवर के बीच उत्पन्न विरोधों की। यह विरोध सर्वथा अस्वाभाविक नहीं था। उसकी भूमिका क्रमश: तैयार हो रही थी। हमें ज्ञात है कि शताब्दी पूर्व में ही महायान दर्शन के उद्भव के साथ संसार-निर्वाण एवं व्यवहार और परमार्थ के बीच अभेद का माध्यमिक दर्शन स्वीकार किया गया। इसके साथ ही बोधिचित्त की वह श्रेष्ठ संकल्पना स्वीकार की गयी, जिसमें दु:खी प्राणियों के दु:ख के निवारण को जीवन का श्रेष्ठ आदर्श स्वीकार किया गया और उसकी अपेक्षा व्यक्ति की अर्हत्त्व

साधना को हीन माना गया। इस मानवीय दर्शन ने बौद्धधर्म को सीमान्तों और विदेशों में बसे लाखों-लाख उन जाति-प्रजाति समूहों तक पहुँचा दिया, जो किसी श्रेष्ठ धर्म-दर्शन और संस्कृति से वंचित थे। वे अपने परम्परागत देवताओं के आधार पर जादू-टोना-टोटका आदि के अन्धविश्वासों पर जीवन-यापन कर रहे थे। बौद्ध भिक्षुओं ने अनेकानेक असहनीय कष्ट उठा कर उन तक पहुँच कर उन्हीं की भाषाओं में एक श्रेष्ठ धर्म दर्शन और विराट् साहित्य प्रदान किया। इससे इन सैकड़ों जातियों-प्रजातियों के जन-जीवन में चतुर्मुखी परिवर्तन आया। अवश्य ही वे एक श्रेष्ठ संस्कृति के उत्तराधिकारी बने। किन्तु ऐतिहासिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म और दर्शन अपने मूल रूप में नहीं रह सकता था; प्रत्युत उन जाति-प्रजाति समूहों के पास जो परम्परागत रूप में विश्वास, देव, देवियाँ, उत्सव और त्यौहार आदि चले आ रहे थे, उनका बौद्ध धर्म और संस्कृति के साथ सम्बन्ध जुटा। उसके साथ वे एक नवीन श्रेष्ठ व्यवस्था के आधार पर बौद्ध धर्म की मुख्य धारा के साथी बने।

नि:सन्देह इन नये प्रयास से बौद्ध धर्म और संस्कृति का आयाम पहले से अधिक विस्तृत हुआ। इस प्रकार परमार्थ और व्यवहार का अभेदवादी दर्शन, सबके उद्धार करने की बोधिसत्त्वों की प्रतिज्ञा तथा धर्म और संस्कृति के अन्तर्गत उपेक्षित एवं दूरस्थ जनजातियों, प्रजातियों एवं संस्कृतियों का सन्निवेश, इन नये तथ्यों से बौद्ध साधना, जीवन और दर्शन के क्षेत्रों में विविधताएं आईं और उन सबके सन्तुलन में शताब्दियाँ लगीं। अति संक्षेप में तन्त्र संस्कृति से सम्बन्धित यही मूलभूत समस्या भारत और तिब्बत में थी परवर्ती काल में उसके समाधान में आचार्य दीपंकर जैसे अनेक आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

इन समस्याओं के समाधान की दृष्टि से आचार्य अतिश दीपंकर ने सिद्धान्त, साधना और विनय तीनों विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। इनमें

कुछ व्याख्या ग्रन्थ, कुछ मूलग्रन्थ, कुछ संग्रह ग्रन्थ, कुछ विनय ग्रन्थ और कुछ गीति और स्तुति ग्रन्थ थे। इनके सम्पूर्ण लेखन में वज्रयान की मूलदृष्टि अनुस्यूत है। प्राचीन ग्रन्थों एवं सिद्धान्तों की व्याख्या कर उन्होंने यह स्थापित किया कि वज्रयान परम्परागत सिद्धान्तों का विरोधी नहीं है, अपितु उसके वास्तविक अभिप्राय का प्रकटीकरण मात्र करता है। विनयग्रन्थ लिखकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि मूल विनयों का पालन जितना श्रावक एवं बोधिसत्त्वयानी भिक्षु के लिए आवश्यक है, उतना ही वज्रयानी साधक के लिए भी। प्राचीन विनय के साथ पारमिताओं की साधना और वज्रयानी समय-संवर को जोड़कर सम्पूर्ण विनय की अनिवार्य को उन्होंने स्वीकार किया। अपने विनय सम्बन्धी ग्रन्थों से उन्होंने बताया कि पाराजिक और पाचित्तिय की व्यवस्था वज्रयान साधना पर भी लागू है और समय-संवर के साथ प्रातिमोक्ष संवर का पालन भी आवश्यक है। वज्रयान की साधना पद्धतियों और स्तुति साहित्य के निर्माण द्वारा उन्होंने उन्हीं विधियों का समर्थन किया जो असामाजिक, अन्धविश्वास एवं कामसक्ति पर आधारित नहीं थीं।

1. बोधिपथप्रदीप ग्रन्थ का सार—

यहाँ इस ग्रन्थ के आधार पर विषय व्याख्यान करना प्रासङ्गिक होगा, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि आचार्य अतिश दीपंकर ने किस विशेष प्रतिभा एवं व्यवहार कौशल से वज्रयान की उत्कृष्ट शिक्षा द्वारा विरोधी तत्त्वों का निराकरण किया और परम्परा के अन्तर्गत वज्रयानी परिवर्तन को सुसंगत बनाया। यहाँ बोधिपथप्रदीप के निम्नलिखित वक्तव्य की ओर ध्यान दें—

आचार्य ने वज्रयान के आदर्श साधक के लिए यह आवश्यक बताया कि सकल प्राणियों के प्रति वह मैत्री भावना करे और समस्त जगत् पर

दृष्टिपात करे, उन्हें दु:ख और दु:ख के कारणों से मुक्त करने की प्रतिज्ञा करते हुए अपने में बोधिचित्त उत्पन्न करे। इस प्रकार के प्रणिधान का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कुछ प्राचीन सूत्र और शास्त्रों के अध्ययन के लिए परामर्श दिया। उन्होंने बताया कि बोधिचित्त की प्रतिज्ञा के कार्यान्वयन के लिए सर्वप्रथम आत्मसंयम एवं विनयों का पालन करना क्यों आवश्यक है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रातिमोक्ष संवरों का पालन करने से ही कोई भी सत्त्व बोधिसत्त्व-संवर का अधिकारी होता है। प्रातिमोक्ष संवरों में भी उन्होंने ब्रह्मचर्यावास पर अधिक बल दिया। दीक्षा देने और लेने का अधिकारी कौन है, इसका नियमन किया और यह भी बताया कि सद्गुरु के न मिलने पर साधक स्वयं किसी चर्या से दीक्षा का लाभ ले सकता है। संबोधि संभारों की चर्चा करते हुए आचार्य ने लोक-कल्याण के लिए छह अभिज्ञाएं और अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त करना आवश्यक बताया। अभिज्ञाएं प्राप्त करने के लिए शमथ और विपश्यना की साधना करना महत्त्वपूर्ण है, इसे स्पष्ट किया।

आचार्य ने बड़ी स्पष्टता से सम्पूर्ण पारमिता साधनाओं की साधना पर बल दिया। उन्होंने कहा कि प्रज्ञा श्रेष्ठ है, किन्तु उपाय रहित प्रज्ञा या प्रज्ञा रहित उपायों की साधना मनुष्य के बन्धन का कारण है। उन्होंने उपाय और प्रज्ञा का विभाजन कर बताया कि कैसे प्रज्ञा और उपाय के युगनद्ध से उत्कृष्ट साधना प्रारम्भ होती है। प्रज्ञा द्वारा समस्त धर्मों की नि:स्वभावता और नैरात्म्य-बोध होने पर यह ज्ञात हो सकेगा कि संसार की उत्पत्ति विकल्पों से हुई है, इसके लिए विकल्पों के परित्याग से ही परम निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। आचार्य ने बताया कि इस प्रकार की निर्विकल्प या अविकल्प भूमि प्राप्त करने पर ही गुह्यमन्त्र शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए योग्य गुरु द्वारा चारों अभिषेक (कलश-गुह्य-प्रज्ञा-चतुर्थ) प्राप्त करना होगा।

गुह्यज्ञानाभिषेक का कौन अधिकारी है? इस प्रश्न को आचार्य ने उठाया और उसका समाधान किया। उन्होंने आदिबुद्धमहातन्त्र आदि ग्रन्थों का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहा कि ब्रह्मचर्यवासी भिक्षुओं को गुह्यज्ञानाभिषेक नहीं ग्रहण करना चाहिए। निषेधों का सेवन करने से भिक्षु-नियमों का विरोध होगा और उन पर चार पाराजिक लगेंगे। आचार्य ने यही सामान्य नियम बताया, किन्तु विशेष स्थिति में उसका अपवाद भी बताया। उन्होंने कहा कि कोई ऐसा गुरु मिले जो ब्रह्मचर्यवासी भिक्षु को भी अभिषेक देने के लिए आज्ञा प्रदान करे और वह शिष्य की उत्कृष्ट क्षमता को समझता हो तो वह तन्त्रों के श्रवण, व्याख्यान, होम, याग आदि कर सकता है। इससे उसको-पाराजिक अपराध नहीं लगेगा। आचार्य ने अपनी इस सन्तुलित वज्रयानी साधना की दार्शनिक आधारभूमि को पुष्ट करने के लिए अनेक दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे, जिसमें बोधिपथप्रदीप, सत्यद्वयावतार, मध्यमकोपदेश, मध्यमकहृदय व्याख्या आदि उल्लेखनीय हैं।

दीपङ्करश्रीज्ञान का जीवनवृत्तान्त एवं भोटदेश में बौद्धधर्म को पुनर्जीवित करने में उनका योगदान[1]

आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान आर्यावर्त भारतवर्ष की पूर्व दिशा में स्थित बंगाल प्रदेश के अन्तर्गत विक्रमपुरी नामक नगर के महाराजा श्रीकुशल एवं महारानी श्रीमती के द्वितीय पुत्र के रूप में ९८२ ई० में उत्पन्न हुए। बालावस्था में इनका नाम चन्द्रगर्भ था। लगभग १० वर्ष की आयु तक इन्होंने लिपि, शिल्प, चिकित्सा एवं नीतिशास्त्र का अध्ययन सम्यक् रूप से सम्पन्न किया। लगभग ११ वर्ष की आयु से २१ वर्ष तक इन्होंने व्याकरण,

---

1. साभार : आर्यत्रिस्कन्धसूत्रं टीकात्रयसंवलितम्—डॉ० लोसंग दोर्जे लबलिङ्, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, २००१, भूमिका, पृ० २५०-२६५

प्रमाण, कला, नाटक, काव्य, अभिधान एवं ज्योतिष आदि विषयों की शिक्षा ग्रहण की। आचार्य जेतारि, बोधिभद्र, युक्तिकोकिल, अवधूतीपाद एवं महायोगी राहुलगुप्त इत्यादि से इन्होंने महायान शास्त्रों का अध्ययन किया। विशेष रूप से आचार्य राहुलगुप्त से तन्त्रयान के अन्तर्गत हेवज्र का अभिषेक प्राप्त करके *गुह्यज्ञानगर्भ* यह गुह्य नाम प्राप्त किया तथा मन्त्रयान के अववाद का भी श्रवण किया। तत्पश्चात् छह वर्षों तक निरन्तर अवधूतचर्या अथवा युक्तिव्रतचर्या का अनुष्ठान करते हुए तन्त्रयान के क्रिया, चर्या, योग एवं अनुत्तरतन्त्र के शास्त्रों का अध्ययन सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न किया। अनेक इष्टदेवों का भी इन्हें साक्षात् दर्शन हुआ। अनेक प्रकार की समाधियों का प्रभाव चित्त में उत्पन्न हुआ। अभिज्ञाएं भी प्राप्त कीं। वज्रयोगिनी का भी साक्षात् दर्शन हुआ और उन्होंने महामण्डल का निर्माण कर आचार्य को अभिषेक प्रदान करके सम्पूर्ण मन्त्रयान का अववाद प्रदान किया।

उसी समय उनमें इस जगत् के सम्पूर्ण मन्त्रयान के निष्णात विद्वान् होने का अहंकार उत्पन्न हुआ, परन्तु महायोगियों ने अन्य अनन्त मन्त्रयान-ग्रन्थों का आवाहन करके आचार्य के समक्ष प्रदर्शन किया, जिसमें कुछ ग्रन्थ तो ऐसे थे, जिनका आचार्य ने नाम तक नहीं सुना था। तब आचार्य के अहंकार का शमन हो गया।

योगी के रूप में चर्या करते हुए वे वन एवं श्मशान इत्यादि में निवास कर रहे थे। उसी समय आचार्य को स्वप्न में मुनीन्द्र ने दर्शाया कि आप अब तक प्रव्रज्या ग्रहण न करके कहाँ भ्रमण कर रहे हो? तब आचार्य के मन में यह विचार आया कि मुनीन्द्र की इच्छा के अनुसार मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहिए।

तदनुसार उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। तब वे महासांघिक उपाध्याय शीलरक्षित से भिक्षु की उपसम्पदा ग्रहण करके आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के

नाम से लोक में प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात् लगभग २९ वर्ष की अवस्था में गुरु धर्मरक्षित से वैभाषिक निकाय की महाविभाषा एवं सप्त-अभिधर्म इत्यादि हीनयान के अनेक ग्रन्थों का सम्यक् रूप से अध्ययन किया। उस समय उन्होंने वैभाषिक आदि चारों मूल निकायों के विनय ग्रन्थों का भी नियत रूप से श्रवण किया तथा वे आपत्तियों के अल्पमात्र दोष से भी मुक्त रहते थे। विनय के नियम के अनुसार शील का पालन करते थे।

तब उनमें शीघ्र ही सम्यक् संबुद्ध बनने की इच्छा उत्पन्न हुई और उसके लिए बोधिचित्त की शिक्षा को ग्रहण करना उन्होंने उचित समझा। उस समय इस विषय में पारंगत विद्वान् स्वर्णद्वीप के महाचार्य स्वर्णद्वीपीय धर्मकीर्ति के बारे में उन्हें सूचना प्राप्त हुई। तत्काल आचार्य स्वर्णद्वीपीय धर्मकीर्ति से मिलने की अभिलाषा से प्रेरित हुए और स्वर्णद्वीप पहुँचने के लिए १३ महीने निरन्तर नाव के द्वारा उन्होंने यात्रा की। आचार्य स्वर्णद्वीपीय से निरन्तर १२ वर्षों तक बोधिचित्त की शिक्षा का अभ्यास, अववाद के साथ सम्पूर्ण रूप से करते रहे। तत्पश्चात् आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान की चित्तसन्तति में बोधिचित्त के विशिष्ट लक्षण का अवबोध हुआ। आचार्य स्वर्णद्वीपीय ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने हृदयगर्भ का प्रतीक चिह्न एक स्वर्णमयी बुद्धप्रतिमा को आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के हाथ में प्रदान कर उनमें बुद्धशासन के शासक पद का हस्तान्तरण किया। पुनः आचार्य दीपंकर आर्यावर्त भारतवर्ष में लौट आये।

इस प्रकार आचार्य दीपंकर के गुरुओं में आचार्य शान्तिपाद, स्वर्णद्वीपीय धर्मकीर्ति, बोधिभद्र एवं आचार्य ज्ञानश्रीमित्र प्रमुख थे। इन आचार्यों से आचार्य दीपंकर ने आचार्य नागार्जुन द्वारा प्रवर्तित गम्भीर (माध्यमिक) दर्शन की परम्परा का अववाद, आचार्य मैत्रेयनाथ द्वारा प्रवर्तित विस्तृत चर्यापक्ष अभिसमय की परम्परा का अववाद और महाजिनपुत्र आचार्य शान्तिदेव द्वारा प्रवर्तित विस्तृत बोधिसत्त्वचर्या की

परम्परा का अववाद सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया। अन्य महासाधक डोम्बी-पा द्वारा प्रवर्तित व्रतों के अधिष्ठान की परम्परा, आचार्य बलिन् द्वारा प्रवर्तित कर्मसंवर के अधिष्ठान की परम्परा, आचार्य महानाम द्वारा प्रवर्तित ऋद्धि-अधिष्ठान की परम्परा एवं आचार्य बुद्धकोटि के द्वारा प्रवर्तित वज्रवाराही अधिष्ठान की परम्पराओं को भी पूर्णतया प्राप्त किया। इस प्रकार सूत्र एवं तन्त्र दोनों विषय में इस जगत् के समस्त पण्डितों से अप्रतिम होकर महाविद्वान् का शीर्षपद प्राप्त किया। तब शीघ्र ही महाराज धर्मपाल ने उन्हें बोधगया से विक्रमशिला महाविहार में आमन्त्रित करके बुद्धशासन के शासक पद को ग्रहण करने का निवेदन किया। तदनुसार आचार्य ने उसे स्वीकार कर बुद्धशासन का सूर्य की भाँति अत्यन्त प्रदीप्त करते हुए विकास किया।

दीपंकरश्रीज्ञान के पूर्व भोट देश में बुद्धशासन की स्थिति—

हिमवन्त भोट देश में तीन महान् धर्मराजाओं ने बुद्धशासन की स्थापना, विकास एवं चिरस्थिति के लिए पर्याप्त प्रयास किया, किन्तु तीसरे महाराज श्री रल्पाचेन के शासनकाल में बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धारहित कुछ मन्त्रियों एवं सहोदर भाई लङ् दरमा ने मिलकर परोक्ष में षड्यन्त्र रचकर राजा रल्पाचेन को मद्य पिलाकर युवावस्था में ही गला घोंटकर उनकी हत्या कर दी। तत्पश्चात् राजा के बड़े भाई लङ्-दरमा, जो दुष्ट प्रकृति के थे, उन्हें राजसिंहासन पर बैठाया गया। उन्होंने पूर्व धर्मराजाओं द्वारा स्थापित विहारों का विनाश, संघ का वध एवं बौद्ध ग्रन्थों को आग लगाकर बौद्ध धर्म का विनाश किया। तीन वर्ष के बाद बौद्धशासन के इस विनाश को सहन न कर ल्ह-लुङ्-पल्-ग्यि-दोर्जे ने बाण मारकर राजा की हत्या कर दी। उसके बाद से सम्पूर्ण तिब्बत में राज करने वाला कोई राजा नहीं हुआ। इस प्रकार बिना राजा के लगभग ७० वर्ष तक मध्य तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रायः लुप्त सा हो गया।

मध्य तिब्बत में बौद्ध धर्म के विलोप के पश्चात् तिब्बत की पूर्वदिशा में स्थित पश्चिमी खम् प्रदेश के भिक्षु लाछेन गोङ्पा रबसेल आदि ने भिक्षुसंघ का पुनर्गठन किया तथा शासन की पुनः स्थापना की। पश्चिमी प्रदेश ऊ-चङ् के महापुरुष येशे होद् तथा लाछेन गोङ्पा रबसेल ने भिक्षुसंघ का विस्तार किया। किन्तु विनय तथा तन्त्र में प्रधानता के विषय में परस्पर विवाद उत्पन्न हो गया, जिससे शासन में विघटन हो गया। यद्यपि अधिकांश जनता बौद्ध धर्म से परिचित थी, फिर भी उसका अभ्यास और चिन्तन न होने से उसके वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ थी। विशेषकर जबसे लङ् दरमा ने शासन का दमन किया था, उसके बाद से शासन की पुनः स्थापना हेतु कुछ तान्त्रिकों ने कण्ठस्थ तन्त्र को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया, जिसका उन्होंने अध्ययन किया था। जहाँ-जहाँ स्मरण नहीं हो पाया, वहाँ वे अपनी ओर से रचना कर पूर्ण कर देते थे। कुछ लोगों ने नकली तन्त्रग्रन्थों की भी रचना कर उसमें सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर दिया। कुछ तान्त्रिकों ने अपनी पत्नी से स्वादिष्ट मदिरा पिलाने को कहा ताकि वे तन्त्रग्रन्थ की रचना कर सकें।

साथ ही, इसी समय भारत से लाल आचार्य एवं नील आचार्य तिब्बत पहुँचे और उन्होंने नकली धर्म, योग और मुक्ति का प्रचार किया। उनके अनुसार स्त्री से सम्भोग योग है तथा शत्रु का विनाश मुक्ति है। कुछ नकली 'तेर-तोन' (बुद्धवचनों के अन्वेषकों) ने स्वयं को असली बताते हुए नकली शास्त्र-ग्रन्थों की खोज की। कुछ नकली तान्त्रिकों ने तन्त्र ग्रन्थों का गलत अर्थ निकालते हुए हिंसा आदि अनेक प्रकार के अकुशल कार्य किए। कुछ तान्त्रिकों ने जादू-टोना दिखाकर लोगों को पथभ्रष्ट किया। कुल मिलाकर यह काल शासन के लिए एक विकट काल साबित हुआ और शासन का ह्रास होता गया। नकली भिक्षु बनकर भी लोगों ने धर्म प्रचार का

कार्य करना चाहा तथा उनके चरित्र एवं व्यवहार ने लोगों को गुमराह किया।

इस प्रकार शासन की दयनीय स्थिति को देखते हुए पश्चिमी तिब्बत के राजा 'येशे-होद्' चिन्तित हो उठे। यह उनके लिए असह्य हो गया। पूर्व के तिब्बती महाराजाओं के द्वारा बौद्ध शासन की वृद्धि एवं विकास के लिए किए गए प्रयासों को स्मरण करते हुए उस समय की विकट स्थिति को देखकर उनका मन खिन्न हो गया। उनके मन में भी पूर्व के राजाओं की भाँति शासन की वृद्धि हेतु कुछ कर गुजरने की इच्छा प्रबल हुई। फलस्वरूप उन्होंने अपना राज्य अपने भाई 'ल्ह-दे' को सौंप दिया और स्वयं भिक्षु हो गए।

तत्पश्चात् 'येशे-होद्' तथा लोछेन रिन्छेन्- ाङ्पो दोनों ने मिलकर विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्म को समाप्त करने हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार किया तथा इसके विरुद्ध राजाज्ञा भी निकलवाई, किन्तु इन सबका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला, जिससे वे और अधिक चिन्तित हो उठे। अन्त में उन्होंने निर्णय लिया कि इन सबको दूर करने का एक ही उपाय है कि भारत से किसी भारतीय बौद्ध आचार्य को तिब्बत आमन्त्रित किया जाए। उन्होंने भारत में तत्कालीन प्रसिद्ध आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के बारे में सुन रखा था। उन्होंने सोचा कि यदि ऐसे महान् आचार्य को तिब्बत में आमन्त्रित किया जा सके तो शासन में फैली समस्त मिथ्या दृष्टियाँ, भ्रम एवं गलत धारणाओं का समाधान हो जाएगा और तिब्बत की जनता के हित में एक महान् कार्य होगा। इसके बाद महामहिम येशे-होद् ने आर्यावर्त भारतवर्ष से महापण्डित आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को बुलाने के लिए महानुवादक 'ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे' को प्रभूत स्वर्णमुद्राएं और अनेक सेवकों के साथ भारत भेजा। दुर्भाग्य से अधिकांश स्वर्णमुद्राओं की चोरी-डकैती हो गई तथा कुछ खो गए और अधिकांश सेवकों का नेपाल तथा भारत के

बीच मार्ग में गर्मी के कारण देहान्त हो गया तथा कुछ तिब्बत वापस लौट गये। मात्र ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे ही विक्रमशिला महाविहार में पहुँच सके। स्वयं अत्यन्त दरिद्र होने के कारण तथा आचार्य दीपंकर को निमन्त्रण देने के लिए मुद्रा एवं द्रव्य की कमी के कारण उनमें आचार्य को भोट देश में निमन्त्रित करने की न हिम्मत हुई न निमन्त्रण दे सके।

फिर भी येशे-होद् के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी और अधिक धन एकत्रित करने की अभिलाषा से सोना एकत्रित करने सीमा पर गए। गर्तोक के मुस्लिम राजा ने उन्हें कैद कर लिया। मुस्लिम राजा ने दो शर्तों पर उन्हें रिहा करने का प्रस्ताव रखा—१. बौद्ध धर्म त्यागकर मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लें, २. अपने शरीर के वजन के बराबर सोना पेश करें। तब येशे-होद् ने कहा कि चाहे प्राण क्यों न चले जाए, किन्तु बौद्ध धर्म का परित्याग नहीं करूँगा। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि 'येशे-होद्' गर्तोक राजा से युद्ध करने गए थे और युद्ध हार कर बन्दी बना लिए गए थे। किन्तु ये बातें सर्वथा अनुचित जान पड़ती हैं, क्योंकि वे राजगद्दी त्यागकर भिक्षु बन चुके थे। अत: युद्ध का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता है।

बाद में येशे-होद् के छोटे भाई 'जङ्छुब-होद्' काफी सोना लेकर अपने भाई को मुस्लिम राजा की कैद से छुड़ाने गए। जब सोना तौला गया तो 'येशे-होद्' के सिर के बराबर सोना कम पड़ गया। जिस कारण उन्हें कैद से रिहा नहीं किया गया और 'जङ्छुब-होद्' मायूस हो गए, किन्तु उन्हें अपने बड़े भाई से कैदखाने में मिलने की अनुमति दी गई, जहाँ 'येशे-होद्' ने बताया कि—'मुझे अपने मरने का दु:ख नहीं है। तुम सारा सोना ले जाकर भारत से आचार्य दीपंकर को तिब्बत बुला सको तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा।' तब 'जङ्छुब-होद्' सोना लेकर वापस अपने राज्य लौट गए। इस प्रकार तिब्बत में बौद्ध शासन के पुनरुत्थान के

लिए राजा 'येशे-होद्' ने अपने प्राणों की आहुति दे दी और मुस्लिम राजा के कैद में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

'येशे-होद्' की इच्छा के अनुसार 'जङ्छुब-होद्' ने लोचावा 'नगछो-छुलठिम-ग्यलवा' को पाँच सेवकों एवं सात सौ स्वर्ण मुद्राओं सहित भारत से आचार्य दीपंकर को आमन्त्रित करने हेतु प्रस्थान कराया। भारत पहुँचकर छुलठिम ग्यलवा विक्रमशिला बौद्धविहार में अध्ययन कर रहे तिब्बती अनुवादक 'ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे' से मिले। दोनों ने विचार-विमर्श कर यह निर्णय लिया कि फिलहाल इस बात को गुप्त रखा जाए और अध्ययन के बहाने वहीं रहा जाए, क्योंकि यदि लोगों को पता चल गया कि वे आचार्य को आमन्त्रित करने आये हैं तो शायद ही आचार्य को जाने दें। इस प्रकार समय बीतने लगा। लोचावा ग्या चोन्डुस् सेङ्गे ने लोचावा नगछो से कहा कि हम भोटवासियों के आचार-विचार के अनुरूप सबसे उपयुक्त आचार्य मात्र दीपंकरश्रीज्ञान ही हैं। अत: उन्हें ही निमन्त्रण हेतु प्रयास करना चाहिए। वैसे तो उस समय आचार्य दीपंकर के अतिरिक्त अन्य बहुत बड़े महान् आचार्य भी विद्यमान थे, जिनमें आचार्य शान्तिपाद, नडपाद, डोम्बीपाद, दीपंकर भद्रपाद, अवधूतीपाद, बोधिभद्र, रत्नभद्र, जेतारि, ललितवज्र, क्षितिगर्भ, ज्ञानगर्भ, कल्याण धर्म और शैलेन्द्र इत्यादि लगभग ५२ वरिष्ठ विद्वान् जीवित थे। ये सभी अपने-अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित थे।

दीपङ्करश्रीज्ञान को भोट देश में आमन्त्रण एवं स्वीकृति—

एक दिन अवसर पाकर बिना किसी भारतीय आचार्य एवं शिष्यों की जानकारी के 'ग्या चोन्डुस्-सेङ्गे' ने लोचावा 'छुलठिम-ग्यल्वा' को आचार्य दीपंकर से एकान्त में भेंट करवाई। इस बीच उन्होंने आचार्य को एक बड़ा सोने का टुकड़ा तथा चारों तरफ स्वर्ण मुद्राओं से सजा एक

'मण्डल' भी भेंट किया। दोनों ने तिब्बत में बौद्धधर्म की स्थापना तथा सोङ्च़न-गम्पो, ठ्रिसोङ्-देउच़न एवं ठ्रि-रलपाचन के काल में हुए बौद्धधर्म के विकास एवं पश्चात् लङ्-दरमा द्वारा सद्धर्म का विनाश, पुनः सद्धर्म का पुनरुत्थान एवं इस समय तक की सद्धर्म की उन्नति एवं ह्रास के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की। उस समय तिब्बत में बौद्धधर्म की जो दयनीय स्थिति थी और सद्धर्म में जो गलत धारणाएं फैल रही थीं, उन सभी समस्याओं से आचार्य को अवगत कराया। इन दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए एक भारतीय आचार्य को तिब्बत में बुलाया जाना आवश्यक समझकर 'येशे-होद्' ने जो प्रयास किया तथा जिसके फलस्वरूप उन्हें मुस्लिम राजा ने कैद कर लिया और वही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए, इन सब बातों का भी विस्तारपूर्वक आचार्य से निवेदन किया। साथ ही यह संदेश भी दिया कि येशे-होद् ने अपने प्राणों की परवाह न कर अपने भाई जङ्छुब-होद् से कहा था कि तिब्बत में बौद्ध शासन की पुनः स्थापना एवं विस्तार के लिए भारत से आपको किसी भी तरह तिब्बत बुलाना परम आवश्यक है। तदनुसार हमें महाराज जङ्छुब-होद् ने आपको बुलाने के लिए भेजा है। वे आपके आने की प्रतीक्षा में आँखें बिछाए राह देख रहे हैं। ऐसा निवेदन करते हुए दोनों की आँखे भर आईं और उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से आचार्य से निवेदन किया कि वे सद्धर्म की रक्षा हेतु महाराज का निमन्त्रण स्वीकार कर तिब्बत चलने की कृपा करें।

तब आचार्य ने कहा—भोट के तीनों पूर्व नरेश, लाछेन-गोङ्पा-रबसेल, येशे-होद् ये सभी बोधिसत्त्व के अवतार मालूम होते हैं। अतः मैं बोधिसत्त्वों की आज्ञा की अवमानना नहीं कर सकता। राजा जङ्छुब-होद् भी करुणा के पात्र हैं। उन्हें सद्धर्म की सेवा के लिए अपार धन-सम्पत्ति एवं मानव की हानि उठानी पड़ी। तिब्बतवासियों पर दया आती है, फिर भी मेरे आचार्य रत्नाकर शान्ति बहुत ही सख्त हैं, वे शायद ही मुझे जाने

की अनुमति दें। इतना ही नहीं, मैं तो अब वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हूँ। बहुत अधिक कुञ्जियों की जिम्मेदारी का बोझ मुझ पर है और बहुत अधिक कार्य अवशिष्ट हैं। शायद ही मैं तिब्बत जा सकूँ। फिर भी मैं आज रात परीक्षण करूँगा। उस रात आचार्य ने अपनी इष्ट देवी तारा की स्तुति कर उनसे तिब्बत जाने के बारे में निवेदन किया। तारादेवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए और भविष्यवाणी की—'तिब्बत के लोगों का कल्याण होगा। विशेषकर, एक उपासक के माध्यम से तुम्हारा सत्त्वार्थ बहुत अधिक सार्थक होगा, किन्तु तुम्हारी आयु कम हो जाएगी। आयु कितनी कम हो जाएगी? ऐसा पूछने पर तब देवी ने कहा कि—यदि भारत में रहोगे तो तुम ९२ वर्ष जीवित रहोगे। किन्तु यदि तिब्बत गए तो २० वर्ष आयु कम हो जाएगी और तुम ७२ वर्ष जीवित रहोगे।' भविष्यवाणी के आधार पर आचार्य ने यह निर्णय लिया कि यदि मेरी वजह से भोटवासियों का उपकार होता है तो मैं अवश्य वहाँ जाऊँगा, चाहे मेरी आयु कम क्यों न हो जाए। दूसरे दिन उन्होंने दोनों लोचावा को बुलाकर उन्होंने तिब्बत जाने की इच्छा व्यक्त की तथा कहा कि मुझे यहाँ के शेष कार्यों को समाप्त करने में कम से कम डेढ़ वर्ष लग जाएंगे। तब तक तुम दोनों आचार्य रत्नाकर शान्ति के पास अध्ययन करो। वे दोनों आचार्य की इस स्वीकारोक्ति से फूले नहीं समाए और उन्होंने आचार्य से निवेदन किया कि आचार्य यदि आपने तिब्बत जाने का निर्णय कर लिया है तो जितना आप चाहें हम दोनों यहाँ रुकने के लिए तैयार हैं।

इस दौरान आचार्य दीपंकर ने अपने सेवकों एवं शिष्यों को बोधगया और नेपाल के स्वयंभू चैत्यों में पूजा करने हेतु भेजा ताकि मार्ग में बाधा न हो। एक दिन समय पाकर आचार्य ने अपने गुरु रत्नाकर शान्ति से निवेदन किया कि तिब्बत में बौद्धधर्म का बहुत ज्यादा विकास हुआ है तथा वहाँ के लोगों की बौद्धधर्म में अगाध श्रद्धा है। इसलिए मेरी वहाँ जाने की

अभिलाषा है। क्या आप मुझे वहाँ जाने की अनुमति देंगे? तब आचार्य रत्नाकरशान्ति ने लोचा़वा छुलठिम-ग्यलवा से कहा कि—तुमने कहा था कि तुम यहाँ अध्ययन करने आये हो लेकिन तुम तो यहाँ हमारे पण्डित को चुराने आये हो। दीपंकर तिब्बत जाने के लिए आग्रह कर रहा है। इतना ही नहीं, तिब्बत में बौद्धधर्म हेतु जो जनहानि एवं धनहानि हुई है, यहाँ तक कि येशे होद् ने अपने प्राण तक त्याग दिए, उन सबका वर्णन भी तुमने आचार्य से किया है। इसलिए तुम लोगों पर दया भी आती है, अत: मैं तुम्हें मात्र तीन वर्ष के लिए आचार्य को तिब्बत ले जाने की अनुमति देता हूँ। किन्तु याद रहे, तीन वर्ष बाद आचार्य को भारत में वापस लाना होगा—ऐसी लोचा़वा छुलठिम-ग्यलवा से प्रतिज्ञा करवाई।

दीपङ्करश्रीज्ञान का भोटदेश में प्रस्थान एवं थोलिङ् विहार में आगमन—

इसप्रकार १०४० ई० में आचार्य दीपङ्कर दोनों लोचा़वा एवं अपने सेवकों सहित भारत से तिब्बत की यात्रा पर निकल पड़े। एक वर्ष उपरान्त वे नेपाल पहुँचे तथा वहाँ एक वर्ष रहे। तत्कालीन नेपाल नरेश अनन्तकीर्ति आदि श्रद्धालु जनों ने आचार्य का आदरपूर्वक सत्कार किया तथा आचार्य ने उन लोगों को अपेक्षानुसार धर्म प्रवचन दिया। प्रसिद्ध 'थाङ्' विहार का निर्माण इसी समय प्रारम्भ किया गया। आचार्य इससे काफी आनन्दित हुए। इसी समय किसी तैर्थिक के काले जादू से महा-अनुवादक लोचा़वा ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे की मृत्यु हो गयी। आचार्य को गहरा आघात पहुँचा और उन्होंने कहा कि—'मेरी जीभ कट गई'। अर्थात् लोचा़वा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता एवं विद्वान् भी थे। फलस्वरूप उन्हें तिब्बत जाने की इच्छा नहीं हुई। इस पर लोचा़वा नागछो-गहरे सोच में पड़ गए और उन्होंने उनसे काफी प्रार्थना की। साथ ही, उन्हें इस बात से भी अवगत कराया कि तिब्बत में मा गेवे-लोडो, रिनछेन- ाङ्पो, लेगपे-शेरब आदि अनेक संस्कृत के अच्छे ज्ञाता एवं लोचा़वा विद्यमान हैं। मैं स्वयं भी कुछ हद तक अनुवाद का कार्य

कर सकता हूँ। अत: आप चिन्तित न होवें। आचार्य ने कहा कि—'ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे जैसा कोई नहीं है।' अर्थात् वे बहुत अच्छे विद्वान् थे। वहाँ से प्रस्थान कर वे १०४२ ई० वर्ष में तिब्बत के डरी प्रान्त के गुगे नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ के राजा जङ्छुब-होद् ने उनका भव्य स्वागत किया। तदुपरान्त वहाँ से 'मङ्-युल' तथा थोलिङ विहार पधारे।

जङ्छुब-होद् की बहिन आचार्य के दर्शन के लिए आई, जो एक भिक्षुणी थी। उसने आचार्य से निवेदन किया कि—मेरा हीरा जैसा एक भाई था, जिसने आपके लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। इस कारण मैं शोक से व्याकुल हूँ। आज आपके तिब्बत आगमन से मेरे भाई का बलिदान सार्थक हो गया। अत: आज मुझे दु:ख से मुक्ति मिल गई। तिब्बत में प्रवास के दौरान बौद्ध शासन के विकास एवं जगत् हित के लिए आप व्यापक कार्य करें, ऐसी मेरी हार्दिक अभिलाषा है। उस समय जङ्छुब-होद् ने तिब्बत में विद्यमान डरी के विद्वानों के बारे में आचार्य से निवेदन किया। उनमें से लगभग ८५ वर्ष के एक वयोवृद्ध प्रसिद्ध अनुवादक लोचावा रिनछेन- ाङ्पो भी डरी प्रान्त में रहते थे। उन्होंने आचार्य के तिब्बत बुलाए जाने तथा वहाँ पहुँचने के बारे में सुना, किन्तु उनके मन में यह विचार आया कि वे मुझसे अधिक विद्वान् नहीं होंगे। फिर भी महाराज जङ्छुब-होद् के द्वारा आमन्त्रित किए जाने तथा शाही मेहमान होने के कारण उन्होंने उनका सत्कार करने का निर्णय किया। उन्होंने आचार्य को 'थोलिङ' विहार में आमन्त्रित किया।

थोलिङ विहार के चारों मंजिलों की दीवारों पर क्रमश: चारों तन्त्रों के इष्टदेवों के चित्र बने हुए थे। जब आचार्य ने वहाँ प्रवेश किया तो उन्होंने प्रत्येक तन्त्रों के इष्टदेवों की एक-एक श्लोक द्वारा स्तुति की। इस प्रकार चारों तन्त्र देवों की चार श्लोकों द्वारा स्तुति कर आसन पर विराजमान हुए। रिनछेन- ाङ्पो ने आचार्य से निवेदन किया कि आपके द्वारा की गई स्तुति

की रचना किसने की है ? आचार्य ने उत्तर दिया कि—यह किसी की रचना नहीं है, यह तो मैंने तत्काल इसी समय रचना कर स्तुति की है। रिनछेन-ाङ्पो आश्चर्यचकित होकर सहम गए। तब आचार्य ने उनसे पूछा—आप क्या-क्या जानते हैं ? उन्होंने अपने सम्पूर्ण अध्ययन का विवरण संक्षेप में निवेदन किया। तब आचार्य ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा कि आप जैसे विद्वान् पुरुष के होते हुए मुझे तिब्बत आने की क्या आवश्यकता थी। पुन: उन्होंने लोचावा से पूछा कि चारों तन्त्रों के अर्थों को एक में संगृहीत करके एक ही आसन पर एक ही व्यक्ति के द्वारा किस प्रकार अनुष्ठान किया जा सकेगा ? लोचावा ने उत्तर दिया—प्रत्येक तन्त्रों की अपनी व्याख्यानुसार क्रमश: पृथक्-पृथक् अनुष्ठान किया जाना चाहिए। तब आचार्य ने कहा कि लोचावा यहाँ आप मात खा गये। इसप्रकार उन्हें तिब्बत में अपने आगमन का प्रयोजन सार्थक प्रतीत हुआ।

दीपङ्करश्रीज्ञान द्वारा भोट-देशवासियों के लिए बोधिपथप्रदीप की रचना—

थोलिङ् विहार में सर्वप्रथम आचार्य दीपङ्करश्रीज्ञान ने चारों तन्त्रों को एक में संगृहीत कर अभ्यास-विधि को संक्षेप में मौखिक रूप से बताया तथा *'गुह्यऋद्धि-आदर्श' नामक* ग्रन्थ की टीका लिखी, जिससे लोचावा रिन्छेन- ाङ्पो अति प्रसन्न हुए। तब उन्होंने सोचा कि—ये तो महा-आचार्यों से भी महान् हैं। इस घटना के बाद आचार्य एवं लोचावा ने मिलकर *अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, पञ्चविंशतिसाहस्रिकालोक-प्रज्ञापारमिता, अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितालोक* आदि पूर्व में अनूदित प्रज्ञापारमिता ग्रन्थों का संशोधन किया। महाराज जङ्छुब-होद् ने आचार्य को तिब्बत में बौद्धधर्म के पूर्व शासन का विकास, लङ्-दरमा द्वारा शासन का विनाश, शासन का विप्रलोप, बौद्धसंघ का पुनरुत्थान, परवर्ती शासन में तन्त्र एवं सूत्र में लोगों के द्वारा फैलाई जा रही भ्रान्तियों, गलत धारणाओं

आदि से अवगत कराया। इस कारण उन्होंने आचार्य से निवेदन किया कि बहुत अधिक न कहकर बुद्धवचनों को एक में संगृहीत कर अनुष्ठान करने का एक संक्षिप्त उपदेश दें। हम भोटवासियों को गम्भीर एवं अद्भुत धर्म की आवश्यकता नहीं है। अत: आप कर्म-हेतुफल से सम्बन्धित धर्म का उपदेश प्रदान करने की कृपा करें। इसके अतिरिक्त भी महाराज ने आचार्य से बौद्धधर्म से सम्बन्धित सूत्र एवं तन्त्र से दस प्रश्न किए। आचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि—कर्म एवं हेतु-फल के अतिरिक्त कोई गम्भीर धर्म नहीं है। यही सबसे गम्भीर धर्म है। अत: सावधानी बरतें। धर्मविरुद्ध, गलत धारणाओं एवं धर्म के विपरीत भ्रान्तियों को दूर करने के लिए ग्रन्थ की रचना करने का निवेदन किये जाने पर आचार्य ने ई० १०४४ में *'बोधिपथप्रदीप'* नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

इसके फलस्वरूप लोगों में जो गलत धारणाएं थीं एवं बौद्धधर्म में जो विप्रतिपत्तियां थीं, वे स्वत: दूर हो गईं। इस बोधिपथप्रदीप का मुख्य अभिधेय विषय मुख्य रूप से तीन प्रकार के पुरुषों के मुक्तिमार्ग का क्रम है तथा इसमें सूत्र एवं तन्त्र दोनों का समन्वय है। यह ग्रन्थ तिब्बत में बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ। इस ग्रन्थ को आधार बनाकर तिब्बत के चारों सम्प्रदायों की परम्पराओं में अनेक ग्रन्थों की रचनाएं हुई हैं। जैसे—गेलुग परम्परा में '*लमरिम-छेनमो तथा ङगस्-रिम-छेनमो*', साक्य में *थुबपा-गोङ्-सेल* एवं *लम-डेस,* कार्ग्युद में *थर-ग्यन* तथा ञिङमा में *कुन ाङ-लमई-श्यल-लुङ* आदि।

दीपङ्करश्रीज्ञान का भोट-देश के अन्य प्रदेशों की यात्रा एवं बौद्धधर्म के विकास में योगदान—

इस प्रकार ङरी प्रान्त में तीन वर्षों तक रहकर आचार्य ने बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार कर अनेक विशिष्ट विनेयजनों को निर्वाण मार्ग में प्रवृत्त

कराया। तत्पश्चात् उन्होंने भारत लौटने का विचार किया, किन्तु नेपाल की सीमा पर युद्ध छिड़ जाने के कारण वे कुछ समय तक पुरङ् नामक जगह में रुक गए। पूर्व में भविष्यवाणी के अनुसार उपासक 'डोम तोनपा' उस समय खम प्रान्त में लामा सेचुन के पास अध्ययनरत थे। जब उन्होंने सुना कि आचार्य दीपंकर तिब्बत आये हुए हैं तो वे उसी क्षण अपने गुरु से अनुमति लेकर आचार्य के दर्शन के लिए डरी की ओर चल पड़े। जब वे पुरङ् पहुँचे तो एक संकरी गली में आचार्य का दर्शन हुआ। उन्होंने जमीन पर लेटकर आचार्य को साष्टांग प्रणाम किया। आचार्य ने उनके सिर पर हाथ रखकर संस्कृत में मंगलवचन का पाठ किया तथा अपने साथ निवास स्थान पर ले गये और उन्हें *'गुह्यसमाजमञ्जुश्रीवज्र'* का अभिषेक दिया और वे आचार्य अतिश के परम शिष्य हो गये।

डोम तोनपा ने उपायकौशल से पूर्वी एवं मध्य तिब्बत में स्थित बौद्ध-विहारों, विद्वानों तथा वहीं अध्ययनरत हजारों भिक्षु-भिक्षुणियों की स्थिति को संक्षेप में आचार्य को बताया। तब आचार्य के मुँह से निकल पड़ा—इतनी अधिक संख्या में भिक्षु-भिक्षुणियाँ तो भारत में भी नहीं हैं। तब तो यह अवश्य सम्भव है कि उनमें बहुत से अर्हत् भी होंगे। उन्हें मध्य तिब्बत की ओर जाने की इच्छा हुई। उनके विचारों को जानकर नागछो लोचावा को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने आचार्य से आचार्य रत्नाकरशान्ति के सामने स्वयं द्वारा की गई प्रतिज्ञा का स्मरण कराया और आचार्य को पकड़कर निवेदन किया कि आप मध्य तिब्बत न जाएं, बल्कि भारत लौट चलें, अन्यथा मैं स्वयं को विश्वासघाती एवं अपराधी महसूस करूँगा।

इस पर आचार्य ने कहा—*''कार्य साधने में असमर्थ (व्यक्ति) को आपत्ति (दोष) नहीं लगेगा।''* आचार्य के इस वक्तव्य से नागछो लोचावा को थोड़ी राहत मिली। तब आचार्य ने *'बोधिपथप्रदीप'* की संस्कृत प्रति तथा एक पत्र के साथ दो व्यक्तियों को विक्रमशिला अपने गुरु के पास

भेजा। पत्र एवं ग्रन्थ प्राप्त होने पर पण्डितों ने उनके द्वारा रचित ग्रन्थ का अवलोकन किया तथा उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भारत से अधिक तिब्बत में आचार्य की यात्रा लाभकारी रही। यदि भारत में रहे होते तो शायद ऐसा गम्भीर एवं संक्षिप्त लघु ग्रन्थ की रचना नहीं कर पाते। तिब्बती लोग अल्पबुद्धि वाले होते हैं, अत: आचार्य ने इस प्रकार के लघु, किन्तु सरल एवं गम्भीर ग्रन्थ की रचना की है। आचार्य रत्नाकरशान्ति तथा अन्य विद्वान् पण्डितों ने एक मत होकर उत्तर में उन्हें पत्र भेजकर निवेदन किया कि इस ग्रन्थ की स्ववृत्ति भी लिखें तथा उन्हें यह संदेश भी भेजा कि वे तिब्बत में जब तक चाहें रह सकते हैं।

पत्रोत्तर प्राप्त होने पर डोम तोनपा (उपासक) बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु नागछो लोचावा ने यह कहकर चैन की सांस ली कि—*''स्थविर ने जो जिम्मेदारी मुझे सौंपी थी मैं आज उससे मुक्त हो गया।''* तदुपरान्त उपासक ने मध्य तिब्बत में रह रहे कावा-शाक्य-वङ्छुग आदि अन्य तिब्बती विद्वानों को आचार्य की भावी यात्रा की सूचना दी। कावा-शाक्य-वङ्छुग ने मध्य तिब्बत के सम्भ्रान्त व्यक्तियों को सूचित किया कि उन्हें आचार्य के स्वागत में उपस्थित होना है।

उस समय प्रसारित सूचना में खुतोन-चोन्डुस्-युङ्डोङ् नामक विद्वान् का नाम गलती से छूट गया था, जिस पर उन्होंने अपना नाम न होने का आरोप लगाया। इस पर अन्य लोगों ने उन्हें यह कहकर समझाने का प्रयत्न किया कि 'आदि' शब्द से आप को भी समावेश कर लिया गया है। तब उन्होंने कहा कि मैं 'आदि' शब्द के अन्तर्गत परिगणित किया जानेवाला व्यक्ति नहीं हूँ। इस कारण वे अन्य लोगों से पहले ही आचार्य के स्वागत के लिए चल पड़े, जिस कारण अन्य लोगों में भी हड़बड़ी मच गयी और लोग उनके स्वागत में आगे पहुँचने के लिए प्रयास करने लगे।

अन्ततः दो माह पश्चात् आचार्य मध्य तिब्बत के 'ञङ्-तोद्' नामक स्थान पर पहुँचे। जहाँ 'खुतोन-चोन्डुस्-युङ्डोङ्' ने उनका स्वागत करते हुए आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आचार्य के चरणों में अपनी टोपी रखी, जो उनके सबसे पहले पहुँचने का प्रतीक था। वहाँ से प्रस्थान कर आचार्य 'वेन' विहार में एक माह तक रुके तथा वहाँ विहार के लोगों ने उनके आगमन के साक्षी के रूप में उन्हीं की एक मूर्ति स्थापित की। तत्पश्चात् अपनी शिष्य मण्डली के साथ वे 'समये' महाविहार पधारे। वहाँ पद्मकरलिङ् में निवास करते हुए उन्होंने अनेक बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों को देखा।

यहीं पर आचार्य ने महान् अनुवादक रिनछेन- ाङ्पो के साथ मिलकर *'प्रज्ञापारमिता दुरवबोधिनी आलोकटीका'* का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया तथा नागछो लोचावा के साथ आचार्य वसुबन्धु रचित 'महायानसंग्रहटीका' का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। आचार्य ने तिब्बत में हुए बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार एवं विकास का अवलोकन करते हुए कहा कि—*''शायद ही भारत में बौद्धधर्म का इतना विकास हुआ हो, जितना तिब्बत में हुआ है''*। उन्होंने 'समये विहार' में ऐसे अनेक तन्त्र ग्रन्थों को देखा, जो भारत में उपलब्ध नहीं थे। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर आचार्य पद्मसम्भव के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा कि—शायद आचार्य पद्मसम्भव इन तन्त्रों को नागलोक से लाये होंगे। वहाँ कुछ साल रहने के पश्चात् वे 'ज्ञेथङ्' गये। ज्ञेथङ् में उन्होंने 'अभिसमयालंकार' का संक्षिप्त एवं विस्तार से दो बार प्रवचन दिया, जिससे शिष्यगण आनन्द से गद्गद् हो उठे। उनमें से एक शिष्य 'छगदर-तोनपा' भी था, जिसने आचार्य के प्रवचन को टिप्पणी के रूप में लिपिबद्ध किया। कालान्तर में इस टिप्पणी ने ग्रन्थ का रूप ले लिया तथा तिब्बत में 'खम प्रान्त के मत वाली अभिसमयालंकार की टिप्पणी' के नाम से वह बहुत लोकप्रिय हुआ और

आगे चलकर इसे बहुत ही प्रसादपूर्ण माना गया। 'ञेथङ' में ही आचार्य ने अपने परम शिष्य उपासक को तीन पुरुषों के मार्गक्रम के परम प्रवचन का उपदेश दिया।

तत्पश्चात् लोचावा 'डोग-लेग-पेइ-शेरब' ने आचार्य को ल्हासा आमन्त्रित किया तथा वहाँ जोवो (स्वामी) शाक्यमुनि एवं मिक्यो-दोर्जे (अचलवज्र) का दर्शन कराया। उसी समय उन्होंने आचार्य एवं रिनछेन-ाङ्पो से आचार्य भव्यकृत 'तर्कज्वाला' का अनुवाद करने का निवेदन किया। तदनुसार आचार्य ने रिनछेन- ाङ्पो के साथ इस ग्रन्थ का तिब्बती में अनुवाद किया। स्वयं आचार्य ने वहाँ रहते हुए 'लघु एवं विस्तृत मध्यमक उपदेश' नामक दो ग्रन्थों की रचना की तथा उनका अनुवाद भी किया। इसके बाद वे पुन: 'ञेथङ' लौट आए। उस वर्ष ग्रीष्मकाल के दौरान 'डोग्-जडछुब-जुडने' ने उन्हें 'डग-येरवा' नामक स्थान में आमन्त्रित किया।

वहाँ उन्होंने बोधिसत्त्वमण्यावलि की आभिप्रायिक टीका 'पितृधर्म एवं पुत्रधर्म' का उपदेश दिया। साथ ही, आचार्य असंगकृत 'उत्तरतन्त्र' की टीका का अनुवाद भी आप दोनों ने सम्पन्न किया। तत्पश्चात् कावा-शाक्य-वङ्छुग ने आचार्य को 'फेनपो' नामक स्थान पर आमन्त्रित किया। वहाँ पहुँचने पर एक स्थानीय 'भूमि संरक्षक देव' ने आचार्य को बाधा पहुँचानी चाही, तब आचार्य ने हयग्रीव तन्त्र के द्वारा उसका दमन किया तथा उसे परिवर्तित कर शासन की सेवा एवं संरक्षण में संलग्न किया।

इस प्रकार यदि हम तिब्बत में आचार्य की कर्मभूमि का अवलोकन करें तो ञेथङ; ल्हासा, येरपा, लेनपा आदि जगहों पर प्रमुख रूप से आचार्य ने धर्मोपदेश दिया। इसके पश्चात् आचार्य पुन: 'ञेथङ' गये। बहुत अधिक परिश्रम करने तथा वृद्धावस्था के कारण उनका शरीर काफी

दुर्बल हो गया था। आचार्य दीपंकर नागार्जुन की गुह्यसमाज परम्परा प्राप्त करना चाहते थे, जो उस समय नरोपा के शिष्य काश्मीरी पण्डित आचार्य ज्ञानाकर के पास सुरक्षित थी।

सौभाग्य से वे उस समय नेपाल में निवास कर रहे थे, ऐसा एक पत्र नागछ़ो लोचा़वा को प्राप्त हुआ। नागछ़ो स्वयं भी उस परम्परा को प्राप्त करना चाहते थे, किन्तु आचार्य के बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण विवश थे। नागछ़ो लोचा़वा यह सोचकर काफी चिन्तित थे कि उन्हें शायद अब आचार्य ज्ञानाकर का दर्शन नहीं हो सकेगा। इस चिन्ता में वे स्वयं भी काफी कम ाोर हो गए थे। आचार्य दीपंकर ने उनके मन की बात जान ली तथा उन्होंने नागछ़ो लोचा़वा से कहा कि महायानी कल्याणमित्र का प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है। अत: तुम नेपाल चले जाओ। नागछ़ो लोचा़वा आचार्य को इस स्थिति में छोड़कर जाना नहीं चाहते थे, किन्तु आचार्य के बार-बार समझाने पर वे जाने को तैयार हो गए। परन्तु उन्होंने जाने से पूर्व आचार्य से दो निवेदन किये—१. आप तो तुषित देवलोक में जन्म लेंगे ही, मैं भी आपके चरणों में तुषित में पैदा होऊँ तथा २. मैंने अपने मठ में आपका एक चित्र बनाया है, कृपा कर आप वहाँ पधार कर उस चित्र का परिशोधन कर अधिष्ठित करें।

आचार्य ने लोचा़वा की दोनों बातें स्वीकार कर ली। परवर्ती कादम्पा लोगों ने वास्तविकता को न जानते हुए नागछ़ो लोचा़वा की यह कहकर निन्दा की कि ''आचार्य निर्वाणोन्मुख थे, ऐसी अवस्था में आचार्य को छोड़कर नागछ़ो लोचा़वा का नेपाल प्रस्थान करना गुरु-शिष्य परम्परा में आस्था न होना लक्षित करता है।'' इस पर गेशे शेरावा यह कहते हुए डाँटते हैं कि ''सम्प्रति हम जो थोड़ा बहुत सुख-शान्ति का अनुभव कर रहे हैं वह नागछ़ो लोचा़वा की कृपा है। हम कादम्पा लोग व्यर्थ में ही एक-दूसरे पर परस्पर अंगुलि उठाते रहते हैं।''

सामान्यत: आचार्य तिब्बत में प्रवास के दौरान ज्यादातर समय उपासक डोम-तोन-पा के साथ रहे और चूँकि वे उनके प्रिय शिष्य थे, इसलिए आचार्य ने तिब्बत में शासन का भार भी उन्हें सौंपा। 'समये' विहार में रहते समय आचार्य ने अनेक गुह्यचर्या, उपाय तथा 'छिमफु' में दोहा आदि गम्भीर उपदेश उपासक को दिए। मृत्यु के पूर्व आचार्य ने उपासक से कहा कि—''मैंने अपना शासन भार तुम्हें सौंप दिया है, तुम्हें इसको सम्भालना है। साथ ही, इस परम्परा के निर्वाह एवं संरक्षण के लिए मठ एवं विहारों का निर्माण भी करना है।'' उपासक ने कहा—मैं एक अत्यन्त दरिद्र व्यक्ति हूँ, उस पर भी एक उपासक मात्र। अत: शायद ही मैं ऐसा विस्तृत कार्य कर सकूँ। आचार्य ने कहा—शिक्षा (=विनय) के अनुसार कार्य करें, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कालान्तर में 'कादम्पा' के प्रसिद्ध अध्ययन केन्द्र ''राडेङ मठ'' की स्थापना इसी उपासक ने की है।

इस दौरान उन्होंने तिब्बत के सौभाग्यशाली विनेयजनों को सूत्र एवं तन्त्र ग्रन्थों का प्रवचन , उपदेश एवं अववाद दिया। विनष्ट शासन परम्परा का पुनरुत्थान किया तथा जो किञ्चिद् मात्र अवशिष्ट था, उसका संवर्धन किया। तिब्बत में धर्म की विप्रतिपत्तियों को चन्द्रमा पर सूर्य के प्रकाश पड़ने की भाँति धूमिल किया। मलरहित शुद्ध बुद्धशासन की पुन: स्थापना की।

दीपङ्करश्रीज्ञान का भोट-देश में देह-त्याग—

इस जीवन के समस्त विनेयजनों की अभिलाषाओं की पूर्ति होने पर आचार्य को देह त्यागने की इच्छा हुई। तदनुसार वे ७३ वर्ष की अवस्था में १०५४ ई० में, तिब्बती पञ्चाङ्ग के अनुसार ९वें माह की २०वीं तिथि को

ज्ञेथङ में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। उनके परिनिर्वाण के उपरान्त उनकी अस्थियाँ 'ज्ञेथङ' के 'नामोछे' में रखी गई। 'ज्ञेथङ' के 'होद्' में उनकी अस्थियों पर एक स्तूप का निर्माण किया गया।

Σ

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། བོདྷིཔཐཔྲདཱིཔ་ནྷམ། བོད་སྐད་དུ། བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་སྒྲོན་མ་ཞེས་བྱ་བ།

बोधिपथप्रदीप

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་འཇམ་དཔལ་གཞོན་ནུར་གྱུར་པ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། །

बोधिसत्त्व कुमारभूत मञ्जुश्री को नमस्कार।

I bow to the youthful Mañjusri, the awakened one

དུས་གསུམ་རྒྱལ་བ་ཐམས་ཅད་དང་དང་དེའི་ཆོས་དང་། །
དགེ་འདུན་རྣམས་ལ་གུས་པ་ཆེན་པོས་ཕྱག་བྱས་སྟེ། །
སྒྲོན་མ་བཟང་པོ་བྱང་ཆུབ་འོད་ཀྱིས་བསྐུལ་བྱུང་པས། །
བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་སྒྲོན་མ་རབ་ཏུ་གསལ་བར་བྱ། །[1]

तीनों कालों के समस्त बुद्धों, उनके धर्मों और संघों का महान् आदर के साथ नमन करके शिष्यवर बोधिप्रभ की प्रेरणा से ***बोधिपथ-प्रदीप*** का प्रकाशन कर रहा हूँ॥ १॥

I bow with deep respect to the Conquerors of the three times,
and to their doctrine,
And to the Spiritual Community.
As requested by the good disciple Jangchub Od,
I will illuminate the *Path to Enlightenment.* [1]

ཚུང་དུ་འབྲིང་དང་མཆོག་བྱུར་པས། ।
སྐྱེས་བུ་གསུམ་དུ་ཤེས་པར་བྱ། ।
དེ་དག་མཚན་ཉིད་རབ་གསལ་བ། ।
སོ་སོའི་དབྱེ་བ་བྲི་བར་བྱ། ।২

पुरुषों (मनुष्यों) को तीन प्रकार का समझना चाहिए—अधम, मध्यम और उत्तम। उनमें से प्रत्येक का स्पष्ट लक्षण एवं भेद को लिखा जा रहा है॥ २॥

Three types of person should be known:
The lesser, the median and the excellent.
I shall elucidate their characteristics
By expressing their differences. [2]

གང་ཞིག་ཐབས་ནི་གང་དག་གིས། ।
འཁོར་བའི་བདེ་བ་ཙམ་དག་ལ། ।
རང་ཉིད་དོན་དུ་གཉེར་བྱེད་པ། ।
དེ་ནི་སྐྱེས་བུ་ཐ་མར་ཤེས། ।৩

जिस किसी भी उपाय से जो केवल अपने लिए ही सांसारिक सुख की चाह रखता हो, उसे अधम पुरुष समझना चाहिए॥ ३॥

Whoever seeks, by whatever means,
Merely the pleasures of cyclic existence
And pursues only his own ends,
He is to be understood as the lesser person. [3]

སྲིད་པའི་བདེ་ལ་རྣུབ་ཕྱོགས་ཤིང་། ।
སྡིག་པའི་ལས་ལས་ངྱོག་བདག་ཉིད། ।
གང་ཞིག་རང་ཞི་ཙམ་དོན་གཉེར། ।
སྐྱེས་བུ་དེ་ནི་འབྲིང་ཞེས་བྱ། ।৫

सांसारिक सुखों से पराङ्मुख होकर, पापकर्म से विरत (अलग) रहकर जो केवल अपने लिए ही शम (निर्वाण) की अभिलाषा करता हो, उसे मध्यम पुरुष कहा जाता है। ॥ ४॥

Whoever refrains from non-virtuous actions
And turns his back to worldly pleasures
For the sake of his own Liberation,
That person is called the median person. [4]

རང་རྒྱུད་གཏོགས་པའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས། །
གང་ཞིག་གཞན་གྱི་སྡུག་བསྔལ་ཀུན། །
ཡང་དག་ཟད་པར་ཀུན་ནས་འདོད། །
སྐྱེས་བུ་དེ་ནི་མཆོག་ཡིན་ནོ། །৮

स्वसन्तानगत (अपने चित्तसन्तति में अनुभूत) दुःखों के समान जो दूसरों के समस्त दुःखों का सर्वथा नाश करना चाहता हो, वह उत्तम पुरुष है। ॥ ५ ॥

As the sufferings experience in ones own continuum,

Those who wishes to eliminate completely

All the sufferings of others

That is the excellent person. [5]

སེམས་ཅན་དམ་པ་བྱང་ཆུབ་མཆོག །
འདོད་པར་གྱུར་པ་དེ་དག་ལ། །
བླ་མ་རྣམས་ཀྱིས་བསྟན་པ་ཡི། །
ཡང་དག་ཐབས་ནི་བཤད་པར་བྱ། །৯

उत्तम बोधि (की प्राप्ति) के अभिलाषी उन श्रेष्ठ प्राणियों के लिए गुरुनिर्दिष्ट सदुपायों का निरूपण करूँगा॥ ६ ॥

For those great beings

Who wish to seek the Great Enlightenment,

A perfect method will be explained

As it was taught by the Teachers. [6]

རྫོགས་སངས་བྱེས་སྐུ་ལ་སོགས་དང་། །
མཆོད་རྟེན་དམ་ཆོས་མངོན་བྱོགས་ནས། །
མེ་ཏོག་བདུག་སྤྲོས་དངོས་པོ་དག །
ཅི་འབྱོར་བ་ཡིས་མཆོད་པར་བྱ། །৮

संबुद्धों के चित्र, मूर्ति आदि, तथा स्तूप एवं सद्धर्म (रूपी आगम एवं शास्त्र ग्रन्थों) की ओर अभिमुख होकर यथाप्राप्त पुष्प, धूप आदि पदार्थों से पूजा करें॥ ७॥

Before the painted or carved images of the
Enlightened One,
Or before a sacred Stupa or a text,
Make offerings of whatever is available,
Such as flowers, incense, and other things. [7]

ཀུན་བཟང་སྨོན་ལམ་གསུངས་པ་ཡི། །
མཆོད་པ་རྣམ་པ་བདུན་དག་ཀྱང་། །
བྱང་ཆུབ་སྙིང་པོའི་མཐར་ཐུག་པར། །
མི་ལྡོག་པ་ཡི་སེམས་དག་གིས། །ཪ

समन्तभद्रचर्या (सूत्र ग्रन्थ) में कहे गए सप्तविधपूजा [वन्दना (ཕྱག་འཚལ་བ་), पूजना (མཆོད་པ་འབུལ་བ་), पापदेशना (སྡིག་པ་བཤགས་པ་), पुण्य-अनुमोदना (རྗེས་སུ་ཡི་རང་བ་), बुद्ध-अध्येषणा (བསྐུལ་བ་), बुद्ध-याचना (གསོལ་བ་གདབ་པ་) तथा पुण्य-परिणामना (དགེ་བ་བསྔོ་བ་)] के अनुरूप बोधिमण्ड पर्यन्त (बुद्धत्व प्राप्ति तक) अवैवर्तिक चित्त से, ॥ ८ ॥

Make all of the seven categories of offerings
Mentioned in the *Samantabhadracarya.*
With the mind irreversibly fixed on
Enlightenment itself. [8]

དཀོན་མཆོག་གསུམ་ལ་རབ་དད་ཅིང་། །
བྱས་མོའི་ལྟ་ང་སར་བཙུགས་ནས། །
ཐལ་མོ་སྦྱར་བར་བྱས་ནས་ནི། །
དང་པོར་སྐྱབས་འགྲོ་ལན་གསུམ་བྱ། ।ཫ

त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म और संघ) में परम श्रद्धा के साथ घुटनों को भूमि पर टेक कर, अञ्जलि बाँध कर सर्वप्रथम तीन बार त्रिशरणगमन करें॥ ९॥

Kneeling the knees on the ground

And with folded hands,

First of all take refuge for three times

With firm devotion to the Triple Gem. [9]

དེ་ནས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ། །

བྱམས་པའི་སེམས་ནི་སྟོན་འགྱོ་བས། །

དན་སོང་གསུམ་དུ་སྐྱེ་སོགས་དང་། །

འཆི་འཕོ་སོགས་ཀྱིས་སྡུག་བསྔལ་བའི། །৯০

इसके बाद सभी प्राणियों में मैत्री चित्तपूर्वक तीन दुर्गतियों (नरक, प्रेत तथा तिर्यक योनियों में तथा मनुष्यों के) जन्मादि, (कामलोक के देवताओं के) च्युति-संक्रमण आदि दु:खों से पीड़ित ॥ १०॥

Then, with a mind full of love

For all sentient beings,

And thinking about the suffering of three lower births,

Death and transmigration etc., [10]

འགྲོ་བ་མ་ལུས་ལ་བལྟས་ཏེ། ।
སྡུག་བསྔལ་གྱིས་ནི་སྡུག་བསྔལ་བ། ।
སྡུག་བསྔལ་སྡུག་བསྔལ་རྒྱུ་མཚན་ལས། ।
འགྲོ་བ་ཐར་བར་འདོད་པ་ཡིས། ।
ལྷོག་པ་མེད་པར་དམ་འཆའ་བའི། ।
བྱང་ཆུབ་སེམས་ནི་བསྐྱེད་པར་བྱ། ।།11

अशेष प्राणियों को देखकर, दुःख-दुःखता, विपरिणाम-दुःखता और संस्कार-दुःखता (इन तीन प्रकार के दुःखों) के मूल कारणों से जगत को मुक्त करने की कामना करने वालों को अवैवर्तिक चित्त से दृढ़ प्रतिज्ञा होकर बोधिचित्त उत्पन्न करना चाहिए॥ ११॥

Gaze upon all beings
Who experience the suffering of suffering,
Having seen the suffering of change and pervasive
suffering.
From this arises the wish to liberate the sentient beings.
With irreversible mind,
Generate Bodhicitta. [11]

དེ་ལྟར་སྨོན་པའི་སེམས་དག་ནི། ।
བསྟེན་པའི་ཡོན་ཏན་གང་ཡིན་པ། ।
དེ་ནི་སྡོང་པོ་བཀོད་པ་ཡི། ।
མདོ་ལས་བྱམས་པས་རབ་ཏུ་བཤད། ।*༡༢*

इस प्रकार प्रणिधिचित्त के उत्पाद के जो भी गुण हैं, वे ***गण्डव्यूह-सूत्र*** में *मैत्रेय* द्वारा कहे गये हैं॥ १२॥

The attributes of the generation of
Aspirational mind
Is explained clearly by Maitreya
In the *Gandavyuha Sutra* . [12]

དེ་ཡི་མདོ་སྡེ་བཅམ་ལྡན་ལ་མཉན་ཏེ། ।
རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་ཀྱི་ཡོན་ཏན་མཐའ་མེད་པ། ।
རྣམ་པར་ཤེས་པར་བྱས་ལ་དེ་ནས་རྒྱུ་མཚན་དུ། ।
དེ་ལྟར་ཡང་དང་ཡང་དུ་སེམས་ནི་བསྟེད་པར་བྱ། ।*༡༣*

उन सूत्रों का पाठ करके अथवा गुरु से श्रवण करके संबोधिचित्त के अनन्त गुणों को और उनके निमित्तों को अच्छी तरह से जान कर बार-बार चित्तोत्पाद करना चाहिए॥ १३॥

By reading and listening to the teacher
Make oneslef understand the infinite Qualities of the awakened mind,
And by understanding the cause of it (Awakened mind),
One may generate that mind again and again. [13]

དཔའ་སྦྱིན་བྱིས་ཞུས་མདོ་དག་ལས། །
འདི་ཡི་བསོད་ནམས་རབ་བསྟན་པ། །
གང་དེ་ཚིགས་བཅད་གསུམ་ཙམ་དུ། །
མདོར་བསྡུས་འདིར་ནི་བྱེ་བར་བྱ། ।།১৫

वीरदत्तपरिपृच्छासूत्र में इस (प्रणिधि) चित्त के पुण्यों का जो निर्देश हुआ है, उसके केवल तीन श्लोकों का (यहाँ) संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है— ॥ १४ ॥

Its virtues are explained in
The *Sutra requested by Viradatta.*
I shall explain here in brief
In three verses that [14]

བྱང་ཆུབ་སེམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་གང་། །
དེ་ལ་གལ་ཏེ་གཟུགས་མཆིས་ན། །
ནམ་མཁའི་ཁམས་ནི་ཀུན་བཀང་སྟེ། །
དེ་ནི་དེ་བས་ལྷག་པར་འགྱུར། ।།১৮

बोधिचित्त का जो पुण्य है, यदि वह रूपवान् है तो (उस रूप से) सम्पूर्ण आकाशधातु को आपूरित करने पर भी वह (पुण्य) अधिक होगा॥ १५॥

Awakened mind's merit:
"If it had form,
It would completely fill the space,
And would exceed it (the space). [15]

བརྒྱའི་ཉེ་མའི་གྲངས་སྙེད་ཀྱི། ।
སངས་རྒྱས་ཞིང་རྣམས་མི་གང་གིས། ।
རིན་ཆེན་དག་གིས་ཀུན་བཀང་སྟེ། ।
འཇིག་རྟེན་མགོན་ལ་ཕུལ་བ་བས། ।།१৬

गंगा के बालुकणों के बराबर अर्थात् असंख्य बुद्धक्षेत्रों को रत्नों से भरकर जो व्यक्ति लोकनाथ को अर्पित करता है, उसकी तुलना में॥ १६॥

Suppose a person offered Buddha-fields
Countless as the sands of the Ganges,
Completely filled with precious jewels
To the lord of the mundane world. [16]

བག་གིས་ཐལ་མོ་སྦྱར་བགྱིས་ཏེ། ।
བྱང་ཆུབ་ཏུ་ཞི་སེམས་བཏུད་ན། ।
མཆོད་པ་འདི་ནི་ཁྱད་པར་འཕགས། ।
དེ་ལ་མཐའ་ནི་མ་མཆིས་སོ། ।*ཀ།*

अञ्जलि बाँधकर जो बोधि में चित्त को झुकाता है, वही पूजा अधिक विशिष्ट है, जिसका कोई अन्त भी नहीं है॥ १७॥

If one with folded hands
Concentrates on Enlightenment,
This offering is far greater.
It has no limits." [17]

བྱང་ཆུབ་སྙིན་པའི་སེམས་དག་བསྒྲེད་ནས་ནི། ।
འབད་པ་མང་པོས་ཀུན་ཏུ་སྦྱིལ་བྱ་ཞིང་། ।
འདི་ནི་སྐྱེ་བ་གཞན་དུའང་དྲན་དོན་དུ། ।
ཇི་སྐད་བཤད་པའི་བསྟན་པའང་ཡོངས་སུ་བསྟང་། ।*ཀ།*

बोधिप्रणिधान चित्त उत्पन्न करके अनेक प्रयत्नों से उसको परिवर्धित करना चाहिए, जन्मान्तरों में भी इसके स्मरण के लिए यथोपदिष्ट शिक्षा का (भी) परिपालन करना चाहिए॥ १८॥

After generating the aspiration for enlightenment,

Develop it through great effort.

In order to maintain this in subsequent lives as well,

Protect the teaching carefully, as it is taught. [18]

འཇུག་སེམས་བདག་ཉིད་སྟོས་པ་མ་གཏོགས་པར། །
ཡང་དག་སྨོན་པ་འཕེལ་བར་འགྱུར་མ་ཡིན། །
རྩོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་སྨོན་པ་འཕེལ་འདོད་པས། །
དེ་ཕྱིར་འབད་པས་འདི་ནི་དེས་པར་བླང་། ། ๑๙

प्रस्थानचित्त रूपी संवर के बिना सम्यग् रूप से प्रणिधान की वृद्धि नहीं होगी, अत: संबोधि प्रणिधान की वृद्धि की इच्छा वाले यत्न पूर्वक इसे (संवर) अवश्य ग्रहण करें॥ १९॥

Without the entrance vows,

The aspiring mind will not develop completely.

Thus, who wishes to strengthen the aspiration mind,

Accept it with perseverance. [19]

སོ་སོར་ཐར་པ་རིགས་བདུན་གྱི། ।
རྣག་ཏུ་སྡོམ་གཞན་ལྡན་པ་དང་། ।
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་སྡོམ་པ་ཡི། ।
སྐལ་བ་ཡོད་ཀྱི་གཞན་དུ་མིན། ।२०

सात प्रकार के प्रातिमोक्षों से और अन्य संवरों से सदा युक्त होने पर ही बोधिसत्त्व संवर की पात्रता का भागी होता है, अन्यथा नहीं॥ २०॥

When one holds the other vows
Of the seven categories of *Pratimoksha,*
He has the opportunity to take
The vow of the Bodhisattva; not otherwise. [20]

སོ་སོ་ཐར་པར་རིགས་བདུན་དང་། ।
དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་ལ། ।
ཚངས་སྤྱོད་དཔལ་ནི་མཆོག་ཡིན་ཏེ། ।
དགེ་སློང་སྡོམ་པ་དག་ཏུ་བཞེད། ।२१

तथागत द्वारा कहे गए सात प्रकार के प्रातिमोक्षों में से ब्रह्मचर्यश्री को सर्वश्रेष्ठ भिक्षु संवर माना गया है॥ २१॥

In the seven categories of *Pratimoksha,*

As taught by the Tathagata,

The celibacy vows of the fully ordained one.

Is considered the best. [21]

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ས་དག་གི། །
ཚུལ་ཁྲིམས་ལེའུ་གསུངས་ཚོ་གཡིས། །
ཡང་དག་མཚན་ཉིད་ལྡན་པ་ཡི། །
བླ་མ་བཟང་ལས་སྡོམ་པ་བླང་། ། ***२२***

बोधिसत्त्वभूमि के शीलपरिच्छेद में कही हुई विधि से सम्यक् लक्षणों से युक्त सद्गुरु से संवर ग्रहण करना चाहिए। ॥ २२॥

In the chapter on good morality
Of the *Bodhisattvabhumi,* it says
Accept vows from a good teacher
Having perfect characteristics. [22]

སྡོམ་པའི་ཚུལ་གལ་མཁས་དང་། ।
བདག་ཉིད་གང་ཞིག་སྡོམ་ལ་གནས། ।
སྡོམ་པ་འབོགས་བཟོད་སྙིང་རྗེ་ལྡན། ।
བླ་མ་བཟང་པོར་ཤེས་པར་བྱ། ।२३

जो संवर-विधि में कुशल हो, स्वयं संवर में स्थित हो और संवर प्रदान करने में समर्थ तथा करुणावान् हो, उसे सद्गुरु समझना चाहिए॥ २३॥

Skilled in the rituals of the vow,
And who abide by the vow.
Who has the knowledge and the compassion to
give the vow.
Understand him to be the perfect teacher." [23]

དེ་ལ་འབད་པས་འདི་འདྲ་བའི། ।
གལ་ཏེ་བླ་མ་མ་རྙེད་ན། ।
དེ་ལས་གཞན་སྡོམ་རྣོད་པ་ཡི། ।
ཚུལ་གཡང་དག་བཤད་པར་བྱ། ।२४

उसको (अर्थात् संवर लेने वाले व्यक्ति को) प्रयत्न करने पर भी इस प्रकार का यदि सद्गुरु न मिले तो उससे अतिरिक्त (आगम के अनुसार) संवर प्राप्त करने की विधि को सम्यग् रूप से कही जा रही है॥ २४॥

After making such an effort,
If such a teacher is not found,
Another way of receiving the vows,
A perfect ritual, will be explained. [24]

དེ་ལ་སྟོན་ཆེ་འཛམ་བའི་དབལ། ।
ཨམྦར་རྒྱ་ཪོད་བྱུང་བ་ཡིས། ।
ཇི་ལྟར་བྱང་ཆུབ་སྦྱངས་བསྟེད་བ། ।
འཛམ་དབལ་བྱི་ནི་སངས་རྒྱས་ཞིང་། ।
རྒྱན་གྱི་མདོ་ལས་བཤད་བ་ལྟར། ।
དེ་བཞིན་འདིར་ནི་རབ་གསལ་བྱེ། । ২৮

मञ्जुश्रीबुद्धक्षेत्र-अलङ्कारसूत्र *(मञ्जुश्रीबुद्धक्षेत्रगुणव्यूहसूत्र)* में कहे अनुसार जैसे पूर्वकाल में मञ्जुश्री ने अम्बरराज के रूप में पैदा होकर जिस प्रकार बोधिचित्त का उत्पाद किया था, उसी प्रकार यहाँ स्पष्ट उल्लेख कर रहा हूँ॥ २५॥

As in a past life Mañjusri
Became as king Ambara,
In the same way, I write explicitly
That he generated the all-awakened mind
Of Buddha's field, Mañjusri,
As explained in the *Ornament Sutra,* Said. [25]

མགོན་པོ་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་སྔ་ན། ।
རྗེས་བཅི་བྱང་ཆུབ་སེམས་བསྐྱེད་ཅིང་། ।
འགྲོ་བ་ཐམས་ཅད་མགྲོན་དུ་གཉེར། ।
དེ་དག་འཁོར་བ་ལས་བསྒྲལ་ལོ། ।২৬

(मैं) नाथों (बुद्धों) के संमुख संबोधिचित्त उत्पन्न कर, समस्त जगत् (के प्राणियों) को आमन्त्रित कर उन्हें संसार से मुक्त कराऊँगा॥ २६॥

"In the presence of all the protectors
I will generate a completely awakened mind.
I invite all beings as guests
To liberate them from cyclic existence." [26]

གནོད་སེམས་ཁྲོ་བཅི་སེམས་ཉིད་དང་། ।
སེར་སྣ་དང་ནི་ཕྲག་དོག་ཉིད། ।
དེང་ནས་བཟུང་སྟེ་བྱང་ཆུབ་མཆོག ।
ཐོབ་ཀྱི་བར་དུ་མི་བྱོའོ། ।২৭

(मैं) प्रतिहिंसा, क्रोध, मात्सर्य (कजूंसी) और ईर्ष्या को आज से लेकर बोधि प्राप्ति पर्यन्त नहीं करूँगा॥ २७॥

“From today onward, I will refrain from
Harmful and Wrathful anger,
Miserliness and jealousy
Until I attain enlightenment.” [27]

ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་སྤྱད་བྱ་ཞིང་། །
སྡིག་དང་འདོད་པ་སྤང་བར་བྱ། །
ཚུལ་ཁྲིམས་སྡོམ་པ་ལ་དགའ་བས། །
སངས་རྒྱས་རྗེས་སུ་བསླབ་པར་བྱ། ।३८

(मैं) ब्रह्मचर्य का आचरण करूँगा, पाप और राग (आसक्ति) का त्याग करूँगा। शीलसंवरों से आनन्दित होकर बुद्धों का अनुकरण करूँगा॥ २८॥

“I will practice the morality of asceticism and
Abandon non-virtuous acts and desires.
Through joy in the vows of morality,
I will tread in the footsteps of the Enlightened
Ones.” [28]

བདག་ཉིད་མྱུར་བའི་ཚུལ་བྱིས་ནི། །
བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་མི་སྨྲོ་ཞིང་། །
སེམས་ཅན་གཅིག་གི་ཕྱུ་ཡིས་ནི། །
ཕྱི་མའི་མྱ་མཐར་གནས་པར་བགྱི། ། ২৯

शीघ्रता से मैं अपनी ही बोधिप्राप्ति के लिए उत्साह नहीं करूँगा बल्कि, मात्र एक प्राणी के लिए भी अन्त तक रहूँगा। (अर्थात् संसार के अन्तिम प्राणी को बोधि प्राप्त कराये बिना मैं स्वयं बोधि प्राप्त नहीं करूँगा।) ॥ २९ ॥

“I have no craving to attain Enlightenment
Quickly for myself.
I will live for infinite lives
For the sake of single sentient being.” [29]

ཚོད་མེད་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པའི། །
ཞིང་དག་རྣམ་པར་སྦྱང་བར་བྱ། །
མིང་ནས་བཟུང་བ་བྱས་པ་དང་། །
ཐོག་མས་བཅུ་དག་ཏུ་རྣམ་པར་ཐོས། ། ৩০

(मैं) अप्रमेय और अचिन्तनीय क्षेत्रों (बुद्धक्षेत्रों) को विशुद्ध करूँगा तथा मेरे नाम को ग्रहण करने वालों के लिए (मैं अर्थात् अम्बरराज रूपी मञ्जुश्री अपने नाम को) दसों दिशाओं में प्रसारित करूँगा॥ ३०॥

"I shall purify the immeasurable and inconceivable Buddha fields.
And disperse my name to ten directions,
For those who hold my name." [30]

བདག་གིས་ལུས་དང་ངག་གི་ལས། །
ཐམས་ཅད་དྲི་མེད་དག་པར་བྱས། །
ཡིད་ཀྱི་ལས་ཀྱང་དག་བྱ་སྟེ། །
མི་དགེའི་ལས་རྣམས་མི་བྱེད། ། ३१

मैं अपने सभी काय और वाक् कर्मों को शुद्ध कर, (इसी प्रकार) मानस कर्मों को भी शुद्ध कर अशुभ-कर्मों को नहीं करूँगा॥ ३१॥

"I will at all times keep Body, Speech and Mind
and all actions thereof, pure.
Having thus purified the mind,
I wouldn't conceive of non-virtuous deeds." [31]

རང་གི་ལུས་ངག་སེམས་ནི་རྣམ་དག་རྒྱུ། །
འཇུག་པའི་སེམས་ཀྱི་བདག་ཉིད་སྡོམ་གནས་པ། །
ཚུལ་ཁྲིམས་བསླབ་པ་གསུམ་ལ་ལེགས་བསླབས་ན། །
ཚུལ་ཁྲིམས་བསླབ་པ་གསུམ་ལ་གུས་ཆེར་འགྱུར། ། ३२

अपने काय, वाक् और चित्त की विशुद्धि के कारणभूत प्रस्थान-चित्तात्मक संवर में स्थित होकर शीलादि त्रि-शिक्षाओं (शील, समाधि और प्रज्ञा) में सुशिक्षित होने से शीलादि त्रि-शिक्षाओं में महान् आदर पायेगा॥ ३२॥

The way to purify one's body, speech and mind
Is to abide in the entrance vow of Bodhicitta.
If perfectly trained in the three trainings
One becomes more respectful of the three trainings. [32]

དེ་བས་རྣམ་དག་རྗེས་བྱང་ཆུབ། །
སེམས་དཔའི་སྡོམ་པའི་སྡོམ་དག་ནི། །
འབད་པར་བྱས་པས་རྗེས་བྱང་ཆུབ། །
ཚོགས་ནི་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་འགྱུར། ། ३३

इसलिए विशुद्ध संबोधि वाले बोधिसत्त्वों के संवर के संवरण में प्रयत्न करने पर संबोधि-संभार परिपूर्ण होगा॥ ३३॥

Thus through constant effort to attain Complete

Enlightenment

And by holding the Bodhisattva's vows,

The Accumulation will be accomplished

Necessary for Complete Enlightenment. [33]

བསོད་ནམས་ཡེ་ཤེས་རང་བཞིན་གྱི། །
ཚོགས་ནི་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པ་ཡི། །
རྒྱུ་ནི་སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་དག །
མངོན་ཤེས་བསྐྱེད་པ་ཉིད་དུ་བཞེད། ། ३४

पुण्य और ज्ञान स्वभाव के संभारों की परिपूर्णता का हेतु सभी बुद्धों ने अभिज्ञा के उत्पाद को ही माना है॥ ३४॥

The cause for the complete accumulation of

Merit and wisdom is

The generation of clairvoyance.

This is accepted by all the Enlightened ones. [34]

ཇི་ལྟར་འདབ་གཉིག་མ་རྫོགས་པའི། ।
བྱ་ནི་མཁའ་ལ་འཕྱུར་མི་ནུས། ।
དེ་བཞིན་མངོན་ཤེས་སྟོབས་བྲལ་བས། ।
སེམས་ཅན་དོན་བྱེད་མྱུར་བ་མིན། ।३५

जैसे पूर्ण विकसित पंखों के विना पक्षी आकाश में उड़ने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार अभिज्ञा बल से विहीन (व्यक्ति) सत्त्वों का हित करने में असमर्थ होता है॥ ३५॥

Just as a bird with undeveloped wings
Can't fly in the sky,
So without having the powers of clairvoyance
One can't work for the welfare of sentient beings. [35]

མངོན་ཤེས་ལྡན་པས་ཉིན་མཚན་གྱི། ।
བསོད་ནམས་དག་ནི་གང་ཡིན་ཏེ། ।
མངོན་ཤེས་དག་དང་བྲལ་བྱུང་ལ། ।
སྐྱེ་བ་བརྒྱར་ཡང་ཡོད་མ་ཡིན། ।३६

अभिज्ञा से युक्त होने पर जो पुण्य एक दिन और रात में प्राप्त होता है, अभिज्ञा से विहीन होने पर (वह पुण्य) सौ जन्मों में भी प्राप्त नहीं होता है॥ ३६॥

The merits that can be accumulated by one who
Possesses clairvoyance, for a single day and night
Cannot be attained in one hundred lives
By those devoid of clairvoyance. [36]

སྐྱེ་དུ་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཚོགས། །
ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་འདོད་གྱུར་པ། །
དེས་ནི་འབད་བྱས་མངོན་ཤེས་དག །
འགྲུབ་པར་འབྱུང་གྱི་ལེ་ལོས་མིན། །३७

शीघ्र संबोधि-संभारों को पूर्ण करने की जिसे इच्छा हो, उसे यत्नपूर्वक ही अभिज्ञाओं की सिद्धि होगी, आलस्य से नहीं। ॥ ३७॥

One who wishes to complete perfectly and quickly.
The accumulations necessary for complete enlightenment
Will accomplish clairvoyance through effort,
Not through laziness. [37]

ཞི་གནས་བྱུང་བ་མ་ཡིན་པས། །
མངོན་ཤེས་འབྱུང་བར་མི་འགྱུར་བས། །
དེ་ཕྱིར་ཞི་གནས་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར། །
ཡང་ནས་ཡང་དུ་འབད་པར་བྱ། །३८

शमथ की सिद्धि के विना अभिज्ञा का उत्पन्न नहीं होगा, अत: शमथ की सिद्धि के लिए बार-बार प्रयास करना चाहिए॥ ३८॥

Without the attainment of Shamatha,

Clairvoyance cannot arise.

Therefore, one should strive constantly

To attain Shamatha. [38]

ཞི་གནས་ཡན་ལག་རྣམས་ཉམས་པས། །
རབ་ཏུ་འབད་དེ་བསྒོམས་བྱས་ཤིང་། །
ལོ་ནི་སྟོང་ཕྲག་དག་གིས་ཀྱང་། །
ཏིང་འཛིན་འགྲུབ་པར་མི་འགྱུར་རོ། ། ३९

शमथ-अङ्गों के ह्रास हो जाने पर, प्रयासपूर्वक भावना करने पर भी हजारों वर्षों में भी समाधि सिद्ध नहीं होगी॥ ३९॥

Even if one meditates with great effort

But many parts of shamatha are degenerated,

Single-pointed concentration will not be achieved

In one thousand years. [39]

དེ་ཕྱིར་ཏིང་ངེའི་ཚོགས་ལེའུ་ལས། །
གསུངས་པའི་ཡན་ལག་ལ་ལེགས་གནས། །
དམིགས་པ་གང་རུང་གཅིག་ལ་ཡང་། །
ཡིད་ནི་དགེ་ལ་གཞག་པར་བྱ། །৪০

अतः ***समाधिसंभारपरिवर्त*** में कहे गए (समाधि के सभी) अङ्गों में सुस्थित होकर किसी भी एक शुभ आलम्बन पर मन को स्थिर करना चाहिए॥ ४० ॥

Therefore, abiding perfectly in the parts (of the practices)
Taught in the *chapter on the accumulation of*
single pointed concentration,
The mind should rest
On any object of virtuous concentration. [40]

རྣལ་འབྱོར་ཞི་གནས་བྱང་བྱུར་ན། །
མངོན་ཤེས་དག་ཀྱང་འབྱུང་བར་འགྱུར། །
ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་སྒྲོར་དང་། །
བྲལ་བས་སྒྲིབ་པ་ཟད་མི་འགྱུར། །৪১

योगी के द्वारा शमथ सिद्ध होने पर अभिज्ञा की भी सिद्धि होगी। (किन्तु) प्रज्ञापारमिता योग के विना आवरणों (क्लेशावरण एवं ज्ञेयावरण) का क्षय नहीं होगा॥ ४१ ॥

If shamatha is achieved by a practitioner
Clairvoyance will also be achieved.
But without the practice of perfect wisdom,
The obscurations will not be destroyed. [41]

དེ་ཕྱིར་ཉོན་མོངས་ཤེས་བྱ་ཡི། ।
སྒྲིབ་པ་མ་ལུས་སྤང་བའི་ཕྱིར། ।
ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་རྣལ་འབྱོར། ।
རྟག་ཏུ་ཐབས་བཅས་བསྒོམ་པར་བྱ། ।৺২

इसलिए क्लेश और ज्ञेय नामक आवरणों का अशेष प्रहाण करने के लिए प्रज्ञापारमिता (शून्यता) योग का सदा उपाय (अर्थात् दानादि) के साथ भावना करनी चाहिए॥ ४२ ॥

In order to abandon all the obscurations
Of affliction and to attain wisdom
Always meditate on the perfection of wisdom practice
And with skillful means. [42]

ཐབས་དང་བྲལ་བའི་ཤེས་རབ་དང་། །
ཤེས་རབ་བྲལ་བའི་ཐབས་དག་ཀྱང་། །
གང་ཕྱིར་འཆིང་བ་ཞེས་གསུངས་པ། །
དེ་ཕྱིར་གཉིས་ཀ་སྤྱད་མི་བྱ། ।৫৩

यद्यपि उपाय से रहित प्रज्ञा और प्रज्ञा से रहित उपाय भी बन्धन कहे गये हैं, तथापि दोनों का प्रहाण नहीं करना चाहिए॥ ४३ ॥

Wisdom devoid of means
And means devoid of wisdom:
These are taught to be bondage.
Therefore never abandon either. [43]

ཤེས་རབ་གང་དང་ཐབས་གང་ཞེས། །
མེ་ཚོམ་དག་ནི་སྤང་བྱའི་ཕྱིར། །
ཐབས་རྣམས་དང་ཕི་ཤེས་རབ་ཀྱི། །
ཡང་དག་དབྱེ་བ་གསལ་བར་བྱ། ।৫৪

प्रज्ञा क्या है ? उपाय क्या है ? इन शङ्काओं का निरास करने के लिए उपाय और प्रज्ञा के भेदों को अच्छी तरह से प्रकाशित किया जा रहा है॥ ४४॥

What is wisdom? What is the means?
In order to resolve these doubts
The distinction between wisdom and the means
Will be perfectly explained. [44]

ཤེས་རབ་ཐ་རོལ་ཕྱིན་སྤངས་བའི། ।
སྤྱིན་བའི་ཐ་རོལ་ཕྱིན་ལ་སོགས། ।
དགེ་བའི་ཚོགས་རྣམས་ཐམས་ཅད་དག ।
རྒྱལ་བ་རྣམས་ཀྱིས་ཐབས་སུ་བཤད། ।৫৮

प्रज्ञापारमिता को छोड़कर दानपारमिता आदि सभी पुण्यसंभारों को जिनों (बुद्धों) ने 'उपाय' कहा है॥ ४५॥

Except for the perfection of wisdom,
The perfection of giving, *etc...*
And all virtuous accumulations are
Explained by the Conquerors to be the means. [45]

ཐབས་གོམས་དབང་གིས་བདག་ཉིད་ཀྱིས། ।
གང་ཞིག་ཤེས་རབ་རྣམ་བསྒོམ་པ། ।
དེས་ནི་བྱང་ཆུབ་སྙིང་དུ་ཐོབ། ।
བདག་མེད་གཅིག་པུ་བསྒོམས་པས་མིན། ।৫৯

उपाय के अभ्यास के वश से जो प्रज्ञा की भावना करता है, उसे शीघ्र ही बोधि प्राप्त होता है, केवल नैरात्म्य की भावना करने से नहीं॥ ४६॥

Vigorous practice of the means and
Proper meditation on wisdom
Lead to Enlightenment in no time.
Merely meditating on selflessness doesn't. [46]

ཕུང་པོ་ཁམས་དང་སྐྱེ་མཆེད་རྣམས། ।
སྐྱེ་བ་མེད་པར་རྟོགས་བྱུང་བའི། ।
རང་བཞིན་སྟོང་ཉིད་ཤེས་པ་ནི། ।
ཤེས་རབ་ཅེས་ནི་ཡོངས་སུ་བཤད། ।།৪৬

स्कन्ध, आयतन और धातुओं के अनुत्पाद का बोध कर उनके स्वभाव को शून्यता के रूप में जानने वाले ज्ञान को 'प्रज्ञा' कहा गया है॥ ४७॥

Having understood the aggregates, elements and
doors of arising (senses)
To be Unproduced,
And knowing their nature to be emptiness,
These are indeed called wisdom. [47]

ཡོད་པ་སྐྱེ་བ་རིགས་མིན་ཏེ།།
མེད་པཉད་ནམ་མཁའི་མེ་ཏོག་བཞིན།།
ཉེས་པ་གཉིས་ཀར་ཐལ་འགྱུར་ཕྱིར།།
གཉིས་ཀ་དག་ཀྱང་འབྱུང་བ་མིན།། ৪৮

सत् की उत्पत्ति युक्त नहीं है, असत् भी खपुष्प (आकाश कुसुम) के समान है, इसलिए दोनों में दोष का प्रसङ्ग होने से द्वयात्मक (अर्थात् सत् और असत्) की भी उत्पत्ति नहीं होती॥ ४८॥

Existence can never be produced.

Non-existence, too, is like a flower in the sky.

Both are subject to *reductio ad absurdum.*

Moreover, neither arises. [48]

དངོས་པོ་རང་ལས་མི་སྐྱེ་ཞིང་། ।
གཞན་དང་གཉིས་ཀ་ལས་ཀྱང་མིན། ।
རྒྱུ་མེད་ལས་མིན་དེ་ཡི་ཕྱིར། ।
ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱིས་རང་བཞིན་མེད། । ৪৯

वस्तु न स्व से उत्पन्न होता है, न पर से, न (स्व-पर) दोनों से और न ही अहेतु से, अतः (वस्तु) स्वभावतः निःस्वभाव है॥ ४९॥

An entity can neither be produced from itself,
Nor from others, nor from both,
Nor from a non-cause. Therefore,
There is no essence to entities. [49]

ཡང་ན་ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཅད་དག །
གཅིག་དང་དུ་མས་རྣམ་དཔྱད་ན། །
ངོ་བོ་ཉིད་ནི་མི་དམིགས་པས། །
རང་བཞིན་མེད་པ་ཉིད་དུ་ངེས། ། ๙๐

अथवा सभी धर्मों का एक और अनेक रूपों से विचार करने पर स्वभाव की अनुपलब्धि होने से (वस्तु) की निःस्वभावता निश्चित होती है॥ ५०॥

Moreover, if all phenomena are analyzed
By the reasoning of one or many.
Their nature is not found.
Therefore, it is certain that there is no inherent existence [50]

སྟོང་ཉིད་བདུན་ཅུའི་རིགས་པ་དང་། །
དབུ་མ་རྩ་བ་སྟོགས་ལས་ཀྱང་། །
དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ནི། །
སྟོང་པ་ཉིད་དུ་གྲུབ་བཞད་པ། ། ๙๑

शून्यता-सप्तति की युक्तियों में और ***मूलमध्यमक*** आदि (ग्रन्थों) में भी वस्तुओं के स्वभाव की सिद्धि शून्यता के रूप में कही गयी है॥ ५१॥

The reasonings given in *shunyatasaptati,*

Mulamadhyamakakarika, etc...

The nature of all entities is

Explained to be established as emptiness. [51]

གང་ཕྱིར་གཞུང་ནི་མང་གྱུར་བས། །
དེ་ཕྱིར་འདིར་ནི་མ་སྟོན་ལ། །
བྱུབ་པའི་བྱུབ་མཐའ་ཙམ་ཞིག་ཏུ། །
བསྒོམ་པའི་ཕྱིར་ནི་རབ་ཏུ་བཤད། །৲৲

चूँकि, ग्रन्थ का आकार न बढ़ जाए, अतः यहाँ विस्तार से नहीं कहा जा रहा है, केवल (आगम एवं युक्ति द्वारा) सिद्ध सिद्धान्त ही, (नैरात्म्य) भावना के लिए प्रकाशित किए गए हैं॥ ५२॥

The text has become too long.

Therefore I haven't elaborated here.

This view is already established

And I will explain it for use in meditation. [52]

དེ་བས་ཆོས་རྣམས་མ་ཉུས་པའི། ।
རང་བཞིན་དག་ནི་མི་དམིགས་པས། ।
བདག་མེད་པར་ནི་སྒོམ་གང་ཡིན། ।
དེ་ཉིད་ཤེས་རབ་སྒོམ་པ་ཡིན། ।৮३

अत: अशेष धर्मों का स्वभाव प्राप्त न होने के कारण जो नैरात्म्य की भावना है, वही प्रज्ञा की भावना है॥ ५३॥

Hence, keeping in mind the phenomena
Whose nature is not found,
Meditation on selflessness
Is the wisdom meditation. [53]

ཤེས་རབ་ཀྱིས་ནི་ཆོས་རྣམས་ཀུན། ।
གང་གི་རང་བཞིན་མ་མཐོང་ཞིང་། ।
ཤེས་རབ་དེ་ཉིད་རིགས་དཔྱད་པ། ।
རྣམ་རྟོག་མེད་པར་དེ་བསྒོམ་བྱ། ।৮৫

जिस प्रकार प्रज्ञा के द्वारा सभी धर्मों का स्वभाव नहीं देखा गया है, उसी प्रकार उस प्रज्ञा की भी युक्ति से परीक्षा कर निर्विकल्प रूप से भावना करनी चाहिए॥ ५४॥

Since the inherent nature of phenomena

Is not seen by wisdom,

That wisdom itself should be analyzed by reasoning.

Meditate on that non-conceptually. [54]

རྣམ་རྟོག་ལས་བྱུང་སྲིད་པ་འདི། ।
རྣམ་པར་རྟོག་པའི་བདག་ཉིད་དེ། ।
དེ་ཕྱིར་མ་ལུས་རྟོག་སྤྱངས་པ། ।
མྱ་ངན་འདས་པ་མཆོག་ཡིན་ནོ། ।།৮৮

विकल्प से उत्पन्न हुआ यह संसार विकल्प स्वरूप (ही) है, इसलिए अशेष विकल्पों का परिहार ही परम निर्वाण है॥ ५५॥

This existence arises from conception.
That is the nature of conception.
Therefore the abandonment of all conception
Is the best liberation. [55]

དེ་ལྟར་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་
རྣམ་རྟོག་མ་རིག་ཆེན་པོ་སྟེ། ।
འཁོར་བའི་རྒྱུ་མཚོན་ལྟུང་བར་བྱེད། ।

རྟོག་མེད་ཏིང་ཏེའི་ལ་གནས་པ། །
ནམ་མཁའ་བཞིན་དུ་རྟོག་མེད་གསལ། །৮৬ ཞེས་གསུངས་སོ།།

जैसे भगवान् ने भी कहा है—

विकल्प महा-अविद्या है, जिसके द्वारा (प्राणी) संसार-सागर में पतित होते हैं, इसलिए निर्विकल्प समाधि में स्थित (योगी) का निर्विकल्प (ज्ञान) स्वच्छ आकाश की भाँति भासित होता है॥ ५६॥

Likewise the Buddha has said,

"Conception is the great ignorance
By which one falls into the ocean of cyclic existence.
For whoever abides in the single-pointed
Concentration of non-conception,
This clear non-conception is like the sky." [56]

རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་ལ་འཇུག་པའི་གཟུངས་ལས་ཀྱང་།

དམ་ཚོས་འདི་ལ་རྒྱལ་བའི་སྲས། །
རྣམ་པར་མི་རྟོག་བསམས་ལྟུང་ན། །
རྣམ་རྟོག་བགྲོད་དཀའ་རྣམས་འདས་ཏེ། །
དེམ་ཏྲིས་མི་རྟོག་ཐོབ་པར་འགྱུར། །৮৮ ཞེས་གསུངས་སོ།།

अविकल्पप्रवेशधारणी में भी कहा है—

इस सद्धर्म में जिनपुत्र (बोधिसत्त्व) निर्विकल्प चित्त वाला होकर विकल्प दुर्ग का अतिक्रमण कर क्रमशः विकल्पशून्यता को प्राप्त करता है॥ ५७॥

In the Aryavikalpapraveshadharani it also says,

"A son of Conquerors following this exalted doctrine,
Contemplates non-conception
Transcends the difficult-to-transcend path of
conception
And gradually attains non-conception." [57]

ལུང་དང་རིགས་པ་དག་གིས་ནི། ।
ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཅད་སྐྱེ་མེད་པའི། ।
རང་བཞིན་མེད་པ་དེས་བྱས་ནས། ।
རྣམ་པར་རྟོག་མེད་བསྒོམ་པར་བྱ། ।།৮৮

आगम और युक्ति द्वारा सभी धर्मों को अनुत्पन्न और निःस्वभाव निश्चित करके निर्विकल्प की भावना करनी चाहिए॥ ५८॥

By scriptures and reasoning
All phenomena are understood as unproduced.
And having ascertained this lack of inherent nature,
Meditate on non-conception. [58]

དེ་ལྟར་དེ་ཉིད་བསྒོམ་བྱས་ན། ।
རིམ་གྱིས་དྲོད་སོགས་ཐོབ་བྱས་ནས། ।
རབ་དགའ་ལ་སོགས་ཐོབ་འབྱུར་ཏེ། ।
སངས་རྒྱས་བྱང་ཆུབ་ཡུན་མི་རིང་། ।৮৫

इस प्रकार इसकी भावना करने से क्रमशः ऊष्मा (प्रयोगमार्ग का अवस्था विशेष) आदि प्राप्त करके प्रमुदिता आदि (भूमियों) की प्राप्ति होगी और बुद्धत्व (प्राप्ति) में भी विलम्ब नहीं होगी॥ ५९॥

If one so meditates
Gradually one will attain the 'heat', *etc*... (stages)
Supreme joy, *etc*... (grounds) will be achieved.
Then one is not far from enlightened Buddhahood. [59]

སྔགས་མཐུ་ཉིད་ལས་བྱུང་བ་ཡི། ।
ཞི་དང་རྒྱས་སོགས་ལས་རྣམས་ཀྱིས། ।
བྱམ་པ་བཟང་བྱུང་ལ་སོགས་པ། ।
བྱུང་ཆེན་བརྒྱད་སོགས་སྟོབས་ཀྱིས་ཀྱང་། ।৬০

मन्त्रशक्ति से साधित शान्तिक तथा पौष्टिक आदि कर्मों के द्वारा भद्रघट आदि अष्ट–महासिद्धि आदि के बल से ॥ ६०॥

Achieved by the power of mantra,
By extensive, pacification, actions *etc...,*
By achieving the status of a good vase, *etc...,*
And by the eight achievements. [60]

བདེ་བ་ཡིས་ནི་བྱང་ཆུབ་ཚོགས། །
ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་འདོད་པ་དང་། །
བྱ་བ་སྤྱོད་སོགས་རྒྱུད་གསུངས་པའི། །
གལ་ཏེ་གསང་སྔགས་སྤྱོད་འདོད་པས། ། ৩৶

जिन्हें आसानी से बोधि-सम्भारों की परिपूर्णता अभीष्ट है और यदि क्रिया, चर्या आदि तन्त्रों में उक्त गुह्यमन्त्र का आचरण करना चाहते हैं॥ ६१॥

If one wants to attain the accumulations necessary for Enlightenment
In a simple way,
The way has been set forth in the *Kriya, Carya* etc. (tantric texts)
If one desires to practice the Guhyamantra, [61]

དེ་ཚེ་སྨོན་དོན་དབང་བསྒྲུབ་ཕྱིར། །
བསྟེན་བཀྲ་རིན་ཆེན་སོགས་སྤྲིན་དང་། །
བཀའ་སྒྲུབ་ལ་སོགས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས། །
བླ་མ་དམ་པ་མཉེས་པར་བྱ། ། ৩২

तो आचार्य-अभिषेक के लिए सेवा (अर्थात् काय एवं वाक् सेवा) तथा रत्न आदि (रत्न, वस्त्र एवं भोजन आदि) दान तथा (गुरु का) आदेश-पालन इत्यादि के द्वारा सद्गुरु को प्रसन्न करना चाहिए। ॥ ६२ ॥

In order to receive the master's initiation,
One should then serve him by offering precious things,
By following his advice, etc...
To please the able teacher. [62]

བླ་མ་མཉེས་པར་བྱེད་པ་ཡིས། ।
ཡོངས་རྫོགས་སྨིན་དབང་བསྐུར་བས། ।
སྦྱིག་ཀུན་རྣམ་དག་བདག་ཉིད་ཀི། ।
དངོས་བྱེད་སྒྲུབ་པའི་སྐལ་ལྡན་འགྱུར། ।ᘔᘕ

(इस प्रकार) प्रसन्न हुए सद्गुरु के द्वारा पूर्ण आचार्य-अभिषेक प्रदान करने से (त्रि-द्वार रूपी काय वाक् एवं चित्त के) सभी पापावरणों से स्वयं विशुद्ध होकर (अधम, मध्यम और उत्तम) सिद्धियों की साधना का पात्र बनेगा॥ ६३ ॥

Having pleased the teacher
And receiving the complete master initiation.
Being thus blessed will purify all of the faults
And you will become a suitable vessel (person) for
realization. [63]

དང་པོའི་སངས་རྒྱས་རྒྱུད་ཆེན་ལས། །
རབ་ཏུ་འབད་པས་བཀག་པའི་ཕྱིར། །
གསང་བ་ཤེས་རབ་དབང་བསྐུར་ནི། །
ཚངས་པར་སྤྱོད་པས་བླང་མི་བྱ། ། ૬૪

आदिबुद्धमहातन्त्र में प्रयत्नपूर्वक निषेध किये जाने के कारण ब्रह्मचारियों को गुह्य–प्रज्ञाभिषेक ग्रहण नहीं करना चाहिए॥ ६४॥

From the *Adibudhamahatantra*
It is strictly prohibited with great effort,
For the monks to have the privilege
Of receiving that secret wisdom initiation. [64]

གལ་ཏེ་དབང་བསྐུར་དེ་འཇིན་ན། །
ཚངས་སྤྱོད་དཀའ་ཐུབ་ལ་གནས་པས། །
བཀག་པ་སྤྱད་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར། །
དཀའ་ཐུབ་སྡོམ་པ་དེ་ཉམས་ཏེ། ། ૬૫

ब्रह्मचर्य की तपस्या में लगे हुए (साधकों) के द्वारा यदि उस अभिषेक (अर्थात् गुह्यप्रज्ञाभिषेक) का ग्रहण किया जाता है, तो उस निषिद्ध (कर्म) के आचरण के कारण ब्रह्मचर्य तप के संवर का क्षय हो जाएगा॥ ६५॥

If a monk who abides in asceticism
Receives that initiation
The vow of asceticism will degenerate
Because he is practicing what is forbidden. [65]

བརྟུལ་ཞུགས་ཅན་དེ་ཐམས་པ་ཡི། ।
ལྟུང་བ་དག་ནི་འབྱུང་འགྱུར་ཞིང་། ।
དེ་ནི་དན་སོང་དེས་ལྟུང་བས། ।
གྲུབ་པ་ཡང་ནི་ཡོད་མ་ཡིན། ।ཅཅ

(इस प्रकार) उस व्रती (अर्थात् तपस्वी) को पाराजिक-आपत्तियाँ पैदा होंगी (लगेंगी), और वह निश्चित ही दुर्गति में पतित होगा, इसलिए उसे सिद्धि कभी नहीं मिलेगी॥ ६६॥

The practitioner will be defeated.
Downfall ensue. And then
He will fall among the low-born.
He will never accomplish anything. [66]

རྒྱུད་ཀྱི་ཉན་དང་འཚད་པ་དང་། ।
སྒྲིན་སྲེག་མཆོད་སྦྱིན་སོགས་བྱེད་པ། ।
སྨོན་དསོན་དབང་བསྐུར་རྣེད་འགྱུར་ཞིང་། ।
དེ་ཉིད་རིག་ལ་ཉེས་པ་མེད། ।ཅཝ

सभी तन्त्रों के श्रवण, व्याख्यान, होम, याग आदि करने में आचार्य-अभिषेक प्राप्त तत्त्ववेत्ता को दोष नहीं होता है॥ ६७॥

One who has received the master initiation and
Who sees the nature of things,
By teaching and listening to the tantras, practicing fire rituals, yajñas, etc...
Does not err. [67]

གནས་བརྟན་མར་མེ་མཛད་དཔལ་ཀྱིས། །
མདོ་སོགས་ཚོས་ལས་བཤད་མཐོང་བ། །
བྱང་ཆུབ་འོད་ཀྱིས་གསོལ་བཏབ་ནས། །
བྱང་ཆུབ་ལམ་བཤད་མདོར་བསྡུས་བྱས། །৬৮

(मैं) *स्थविर दीपङ्करश्री* ने सूत्र आदि धर्म(ग्रन्थों में उक्त वचनों) के अनुसार *बोधिप्रभ* की प्रार्थना पर ***'बोधिपथप्रदीप'*** का संक्षेप में प्रणयन किया है॥ ६८॥

I, Sthavira *Dipankarasrijña,*
Having understood the Sutras and other scriptures,
As requested by *Jangchub Od*
Have explained briefly the path leading to
Enlightenment. [68]

བྱང་ཆུབ་ལམ་གྱི་སྒྲོན་མ་སྒྲུབ་དཔོན་ཆེན་པོ་དཔལ་མར་མེ་མཛད་ཡེ་ཤེས་ཀྱིས་མཛད་པ་རྫོགས་སོ། །

རྒྱ་གར་གྱི་མཁན་པོ་ཆེན་པོ་དེ་ཉིད་དང་། ཞུ་ཆེན་གྱི་ལོ་ཙྪ་བ་དགེ་སློང་དགེ་བའི་བློ་གྲོས་ཀྱིས་བསྒྱུར་ཅིང་ཞུས་ཏེ་གཏན་ལ་ཕབ་བའོ། །ཆོས་འདི་ཞང་ཞུང་ཐོ་ལིང་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་མཛད་བའོ།། ||

महाचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान द्वारा विरचित 'बोधिपथप्रदीप' समाप्त।

स्वयं भारतीय महोपाध्याय *(दीपङ्करश्रीज्ञान)* और महासंशोधक लोकचक्षु-भिक्षु *'गेवे-लोडो' (कल्याणमति)* ने (इस धर्म ग्रन्थ का) अनुवाद एवं संशोधन कर निर्णीत किया। यह धर्म(ग्रन्थ) 'शङशुङ' क्षेत्र के 'थोलिङ्' नामक विहार में रचा गया।

"Lamp of the Path to Enlightenment" written by the great *Acarya Dipankarasrijñana comes to end.*

Translated, edited and established by the Indian Mahopadhyaya himself with great editor-translator Gelong Gewai Lodoe. This text was composed in the monastery of *Tholing* in Shang-shung (West Tibet).

***